योग सिद्धान्तो और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष 30 जनवरी-फरवरी 1998 अंक : 10-11

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन, संवाई (आगरा) - 283 202

संस्थापक :
योगी-योगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दामोदर शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
श्री चन्द्रशेखर 'दिव्य'

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा

श्री गोविन्द सोनी

ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा

वार्षिक शुल्क : 65/- रु०
एक प्रति 6/- रु०
त्रिवार्षिक शुल्क 120/- रु०
आजीवन शुल्क 651/- रु०

इस अंक के लेख

- गोविन्द पुरुषं तमहं भजामि 1
- अमृत कण 2
- हमारा कर्माशय (विशेष लेख) 3
  -योगीराज अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज
- योग साधना एवं सिद्धियाँ (सम्पादकीय) 9
- योगयुक्त आहार-विहार 12
  -प्रो० आचार्य चन्द्रहास शर्मा
- सद्गुरु मानसिक रोगों के वैद्य हैं 18
  -ब्र० ओमप्रकाश
- किमस्ति योग 23
  -रचनाकार—द्वारका प्रसाद शर्मा
- वैष्णवी विद्या या अजपा गायत्री "प्राण विद्या" 28
  -पं० राजेन्द्र प्रसाद पाठक
- मेरे श्री गुरुदेव एक सिद्ध फकीर की दृष्टि में -केशव उपाध्याय 33
- प्रथम पूजन गुरुदेवजी का या श्री गणेश जी का 35
  -राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)
- खेल-खेल में बात-बात में शक्तिपात 39
  -जगमन्दर दास

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 30
अंक
11-12

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तप्राप्यर्थान् बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवत् महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

जनवरी
फरवरी
1998

गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि

एकोऽप्यसौ रचयितुं जगदण्डकोटिं
यच्छक्तिरस्ति जगदण्डचया यदन्तः
अण्डान्तरस्थपरमाणु चयान्तरस्थं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।

अर्थात्

जो यद्यपि सर्वथा एक हैं उनके सिवा दूसरा कोई नहीं, फिर भी जो अपनी महिमा से करोड़ों ब्रह्माण्डों को रचने की शक्ति रखते हैं। यही नहीं ब्रह्माण्डों के समूह जिनके भीतर रहते हैं, साथ ही जो ब्रह्माण्डों के भीतर रहने वाले परमाणु–समूह के भी भीतर स्थित रहते हैं उन आदि पुरुष भगवान गोविन्द को मैं भजता हूँ।

अमृत कण

भगवान् को प्रसन्न करने वाले आठ भाव पुष्प

अहिंसा प्रथमं पुष्पं पुष्पमिन्द्रिय निग्रहः
सर्व पुष्पं दया भूते पुष्पं शान्तिर्विशिष्यते।।
शमः पुष्पं तपः पुष्पं ध्यान पुष्पं च सप्तमम्
सत्यं चैवाष्टमं पुष्पमेतैस्तुष्यति केशवः
एतैरेवाष्टभिः पुष्पैस्तुष्यत्येवार्चितो हरिः
पुष्पान्तराणि सन्त्यत्र बाह्यानि मनुजोत्तम।।

(अग्नि पुराण)

अर्थात्

अहिंसा प्रथम पुष्प है। इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को मनमाने विषयों में न जाने देना) दूसरा पुष्प है, प्राणिमात्र पर दया तीसरी सर्वोपयोगी पुष्प है। शान्ति (किसी भी अवस्था में चित्त को क्षुब्ध न होने देना) चतुर्थ पुष्प सबसे बढ़कर है। 'शम' अर्थात् मन को वश में रखना पाँचवा पुष्प है। तप छटा पुष्प है। ध्यान (इष्ट देव में तदाकार वृत्ति) सातवाँ पुष्प है और आठवाँ पुष्प 'सत्य' है। इन पुष्पों से भगवान केशव प्रसन्न होते हैं। इन्हीं अष्ट पुष्पों से पूजित होने पर ही श्री हरि प्रसन्न होते हैं। हे मनुष्यों में श्रेष्ठ ! इनके अतिरिक्त बाह्य पुष्प भी इस भूमण्डल पर हैं।

विशेष लेख

हमारा कर्माशय

योगीराज अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

कर्माशय शब्द का अर्थ है **'शुक्ला शुक्ल कर्मणाम आशय इति कर्माशय'**। अर्थात् भोग पर्यन्त जिसमें अच्छे व बुरे कर्मों का संचय रहा करता है उसी स्थान का नाम कर्माशय है। कर्माशय ही समय-समय पर प्रारब्धानुसार अच्छे-बुरे कर्मों का भोग मनुष्य को दिया करता है। भगवान श्री पतंजलि देवजी ने कर्माशय को दो भागों में विभाजित करके उसका स्वरूप समझाया है और मनुष्य मात्र को यह शुभ प्रेरणा दी है कि यदि वह तीव्र संकल्प से चाहे तो इस ही जीवन में कुछ थोड़े से साधनों के द्वारा अपने आप को अपूर्व परिवर्तित कर सकता है, भगवान पतंजलि देवजी कहते हैं- संस्कार वशात् काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से उत्पन्न हुआ कर्माशय तीव्र साधनों के संयोग से इस ही जन्म में अपने पाप पुण्यात्मक भोग को दे दिया करता है।

इस ही का नाम **'दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय'** कहा है जो व्यक्ति कर्म मीमांसा के सिद्धांत को रूढ़िवाद और न कुछ मानकर अपने आपको हतोत्साह किये रहते हैं उनके लिये यह अनोखा चमत्कारिक साधन है कि वह अपने कर्माशय को 'दृष्ट जन्म संवेदनीय' का अर्थ है कि जो कर्म इसी जन्म में किये जायें और इनमें तीव्र संवेग होने के कारण मनुष्य इस ही जन्म में उनका उपभोक्ता हो जाये। जो कर्माशय **'अदृष्ट जन्म संवेदनीय'** अर्थात् अन्याय दूसरे जन्मों में फल देने वाला है। उसके लिये तो हर मनुष्य यह कह ही सकता है कि क्या कहा जा सकता- ये दुःख या सुख हमारे कृत कर्मों का उपभोग रूप फल है क्योंकि उसके सामने कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है जिससे कि वह जान सके कि यह 'भोग' हमारे उन-उन कृत कर्मों का फल है। इसलिये 'अदृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय पर मनुष्य सहसा कभी विश्वास करने को तैयार नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य मन नकद धर्मी है। मन हर समय प्रत्यक्षानुभूति का उपासक बना रहता है। वह उसी सिद्धांत को सत्य मानना चाहता है कि जिसके परिणाम को वह निर्णयात्मक रूप से स्पष्ट जान ले इसलिये कर्म मीमांसा के ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा वाले साधक के लिये यह उत्तम साधन है कि वह तीव्र संवेगात दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय को तैयार कर ले और उसके परिणाम को भी इस ही जन्म में देख डाले। भगवान पतंजलि देव ने दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय तैयार करने का निर्देश योग दर्शन में किया है।

क्लेश मूलः कर्माशयो दृष्टा-दृष्ट जन्म वेदनीयः इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुये व्यास देव जी ने अपने विचार व्यक्त किये। अर्थात् पाप पुण्यात्मक कर्माशय काम, क्रोध, मोह, द्वेष से उत्पन्न हुआ दृष्ट जन्म संवेदनीय (अर्थात् इसी जन्म में किये हुये कर्मों के फल इसी जन्म में देने वाला तैयार हो जाय करता है। पुण्यात्मक कर्माशय भी तैयार हो जाता है। पुण्यात्मक कर्माशय तैयार करने के लिये साधक को निम्नांकित उपायों का अवलम्ब लेना पड़ता है। तीव्र संवेग के द्वारा किया हुआ तप एवं तीव्र संवेग, (गाढ़ी लगन के साथ लगायी हुई समाधि) बहुत जल्दी से। इस दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय को तैयार कर देते हैं इसके अतिरिक्त ईश्वर देवता ऋषि आदि महानुभावों की आराधना से दृष्ट जन्म संवेदनीय पुण्य कर्माशय तैयार हो जाया करता है। इसके अतिरिक्त विश्वासघात महानुभावों में या तपस्वी लोगों में बार-बार किया हुआ उपकार पाप मूलक दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय को तैयार करके उसके फल को देने वाला बन जाता है। इसके उदाहरण में भगवान व्यास देव ने नदीश्वर एवं महाराजा नहुष के उदाहरण लिखे हैं। जिस प्रकार नदीश्वर अपना दृष्ट जन्म संवेदनीय पुण्य कर्माशय का तात्कालिक भोग उपस्थित हो जाने के कारण श्री नदीश्वर जी मनुष्य योनि को छोड़कर देवयोनि में बदल गये और राजा नहुष देवताओं का राजा हो जाने के बाद भी अहंकारविष्ट रहा और अगस्ता देवों के द्वारा शाप पाकर सर्पयोनि को प्राप्त हो गया। ये उसके अत्यन्त अहंकार पूर्ण दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय का फल था।

जिस प्रकार से भगवान व्यास देव ने उपरोक्त दृष्ट जन्म संवेदनीय पुण्य कर्माशय को तैयार करने के चार या पाँच उपायों का अपने भाष्य में वर्णन करने का जिक्र किया है उसको हम अपने इस लेख में सोदाहरण समझाकर स्पष्ट कर देना चाहते हैं ताकि कोई भी साधक उत्साहहीन न होकर अपने आपको परम श्रेयाभिमुख कर सकें। श्री व्यास देवजी ने कहा—

"तत्र तीव्र संवेग न मन्त्र तपः समाधिभिर्निर्वर्तित" यह तीन साधन हैं जो अपनी साधना एवं कर्तव्य पर निर्धारित हैं. साधक तीन प्रकार के हुआ करते हैं। मृदु संवेग अर्थात् बीच की लगन वाला और तीव्र संवेग इसका अर्थ है बहुत ही उत्कृष्ट लगन वाला। साधकों के मृदु मध्य और तीव्र संवेग तो होते ही हैं किन्तु साधन भी उनको अपनी लगन के अनुरूप मिल जाये तभी वह साधना की पराकाष्ठा को पा सकते हैं। यदि किसी मृदु संवेग वाले साधक को कोई अधिमात्र उपाय की साधना मिल गई तो वह उत्साहहीन होकर आगे नहीं बढ़ सकेगा, उस साधक को वह साधना इतनी भार रूप दिखलाई देगी जिस प्रकार हाइमरी स्कूल के किसी बच्चे को डिग्री कालेज की शिक्षायें व्यर्थ भार रूप दिखलाई दिया करती हैं। इसलिये साधन भी साधक के अनुरूप होना चाहिये, अन्यथा साधक जहाँ का तहाँ रह जायेगा, व अपनी

प्रगति को ऊँची नहीं बढ़ा सकेगा, भगवान व्यास देव जी के दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय तैयार करने के लिये और उसके सद्य परिपचन के लिये पाँच प्रमुख उपायों का वर्णन किया है उनमें से पहला साधन मंत्र का जप, अर्थात् तीव लगन के साथ स्वाध्याय संलग्न हो जाना, श्री व्यास देवजी ने स्वाध्याय के दो रूप बतलाये हैं।

प्रणवादि पवित्राना जपः स्वाध्याय मोक्ष शास्त्राणां मध्ययनं वा स्वाध्यायः। अर्थात् परमात्मा के पवित्र नाम ओंकारादियों का जप करना स्वाध्याय कहलाता है या मोक्ष फलप्रद श्री मद्भगवद् गीता, उपनिषद, शिव सहस्त्र नाम विष्णु सहस्त्र नाम आदि स्रोतों का पाठ करना भी स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय का फल भगवान श्री पतंजली देव जी अपने योग दर्शन में इस प्रकार बतलाते हैं।

स्वाध्यायाष्टिट देवता सम्प्रयोगः।। अर्थात अनवरत स्वाध्याय करने से मनुष्य अवश्य ही इष्ट देव की कृपा का लाभ करता है। इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुये श्री व्यास देव जी भी इस सिद्धांत का पूर्णरूपेण स्पष्टीकरण करते हैं।

देवा, ऋषयः, सिद्धश्च स्वाध्याय शीलस्य दर्शन गच्छति, अर्थात देवता लोग, ऋषि लोग और सिद्ध महापुरूष स्वाध्याय शील व्यक्ति की आँखों के सामने जाया करते हैं और उनके कार्य कर दिया करते हैं।

स्वाध्याय के साथ तप का सम्मिश्रण और कर दिया जाये तो सोने पर सुहागे वाली बात बन जाया करती है। तप और स्वाध्याय करने वाला व्यक्ति जल्दी ही निःश्रेयस भागी बन जाता है।

तप की साधना

भगवान पतंजलि देव ने अपने योग सूत्र में द्वन्द्व सहनम तपः कह करके तप का लक्षण किया। द्वन्द्व सहन का अर्थ है सर्दी गर्मी भूख प्यास आदि के जोड़े को सहन करना, द्वन्द्वों को प्राप्त करके धीर पुरूष विचलित नहीं होते, तप का अंतिम फल भगवान पंतजलि देव ने इस सूत्र में किया है–

कायेन्द्रिय सिद्धिर शुद्धि क्षयात्तपसः।।

अर्थात–तप के द्वारा अशुद्धि नाश हो जाने पर कायिक और इन्द्रिय सिद्धि उपलब्ध होती है। व्यास जी के अनुसार उत्तरोत्तर बढ़ाया हुआ तप अशुद्धि के आवरण रूप मल को नष्ट कर देता है और आवरण भंग हो जाने पर कायिक सिद्धि अणिमादि और ऐन्द्रिय सिद्धि दूर–दर्शन, दूर श्रवण आदि मनुष्य को स्वभाव से ही प्राप्त होती है। आज-कल कलिकाल के जमाने में भी तपस्वियों के इस प्रकार के परिणाम बिल्कुल देखने में आते है। मुझे इस संदर्भ में कायस्थ जाति के अंदर जन्म लेने वाले एक तपस्वी बालक की सच्ची घटना का स्मरण आया। सन् १९४१ में आगरा कालेज में ओम प्रकाश नाम का एक कायस्थ बच्चा शिक्षा प्राप्त करता था। श्री कृष्ण दर्शन की तीव्र लगन जाग्रत हो गयी। और वह कालेज की शिक्षा छोड़कर श्रीकृष्ण दर्शनार्थ श्री धाम वृंदावन को चला गया, वृंदावन में जाकर के उसने गुरुकुल भूमि के पीछे श्री यमुना जी के तट पर एक

कदम वृक्ष के नीचे बैठ कर अपनी भूख प्यास को सहन करके तीव्रतम तपश्चर्या आरंभ की। वह बालक अड़सठ दिन जीवित रहा। श्री वृंदावन के गोस्वामियों ने उसकी जीवनी पर एक पुस्तक लिखी है उसमें उन्होंने स्पष्ट वर्णन किया है। साठ दिन की तीव्र तपश्चर्या के बाद उसको स्वभाव से ही दूरदर्शन और दूरश्रवण की योग्यता प्राप्त हो गयी थी और अपने तीव्रतम स्वाध्याय से उसको स्थानीय सिद्धों के दर्शन भी प्राप्त हुये। महाराजा उत्तानपाद के बालक ध्रुव ने घनघोर जंगल में जाकर नारद मुनि से मंत्रोपदेश पाकर के तीव्रतम तपश्चर्या और स्वाध्याय आरम्भ किया जिसके परिणाम स्वरूप वह इष्टदेव भगवान नारायण के दर्शन प्राप्त करके कृत कृत्य हो गया। जिस समय उसकी तपश्चर्या और स्वाध्याय से प्रसन्न होकर भगवान नारायण ने उसको वरदान देने की इच्छा प्रकट की तो उसने बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि प्रभो! राज्य पाने की इच्छा से तपश्चर्या में लगा था और अकस्मात् मैंने आपको पा लिया। कांच को ढूँढने वाला मैं आपको दिव्य रत्न के रूप में पा गया। हे स्वामि अब मैं कृतार्थ हो गया हूँ। मुझे अब वरदान की आवश्यकता नहीं है, यह ध्रुव के तीव्रतम तप और स्वाध्याय का उत्कृष्ट परिणाम था। श्री व्यास देव जी ने दृष्ट जन्म संवेदनीय कर्माशय को तैयार करने का तीसरा साधन समाधि बतलाया है।

समाधि:– समाधि में उत्तरोत्तर उत्कृष्ट वृत्तियों का उदय हुआ करता है सर्वार्थता का नाश होता है और एकाग्रता का उदय होता है, मनुष्य के चित्त का यही समाधि परिणाम है। इसका स्पष्टीकरण पतंजलि देव ने इस प्रकार किया है। अर्थात सर्वार्थता का नाश होता है और एकाग्रता का उदय होता है, यही चित्त का समाधि परिणाम है। समाधि में साधक का चित्त क्योंकि विवेक ख्याति की ओर हुआ करता है और वह उत्तरोत्तर समझता चला जाता है। इसलिये सम्प्रज्ञात योग के अभ्यासी उस योगी का पुण्य भी उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है और उसका फल यह निकलता है, प्रतिदिन उसके क्लेशक्षय हो जाते हैं और दृष्ट जन्म संवेदनीय एक उज्जवल कर्माशय तैयार हो जाता है। जो उस योगी को अपना उत्कृष्ट परिणाम तत्काल दिखा दिया करता है।

भारतवर्ष के इतिहास में इस प्रकार के योगियों के उदाहरण बहुत काफी मात्रा में मिलते हैं। गोपीचन्द भर्तृहरी का अमृत लाभ करना समाधि जनितों दृष्टी जन्म संवेदनीय पुण्य कर्माशय का ही उज्जवल परिणाम था, उनके समान ही और भी भारत वर्ष के योगी है जो समाधि के बल से अपने पुण्य अपने पुण्य प्रारब्ध का भुगतान करके अजरत्व एवं अमरत्व लाभ कर चुके हैं। योगी अपनी साधना के बल से जब कूटस्थ स्थिति में जाया करता है तो वह संसार के विकारों में जाया करता है तो वह संसार के विकारों से बिल्कुल परे हो जाया करता है उसके कर्म-अकर्म के रूप में बदल जाया करते हैं। वह करता हुआ भी कुछ नहीं करता, खाता हुआ भी नहीं

खाता, पीता हुआ भी नहीं पीता, सोता हुआ भी नहीं सोता, यही इसकी कूटस्थ स्थिति है, जो बिल्कुल विकार रहित हुआ करती है, इस विषय को स्पष्ट करते हुये अखिल लोक पावन जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण ने श्री मद्भागवद्गीता के तीसरे अध्याय में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि जो मनुष्य आत्म संतुष्ट है और अपने आप में ही संतुष्ट है, उसका संसार में कोई कर्तव्य शेष नहीं रहता है वह कोई कार्य करे या न करे इसका प्राणी मात्र में कोई अर्थ व्यापार नहीं रहता। ऐसे कूटस्थ योगी पर कोई भी कर्मफल लागू नहीं होता।

हमारे शास्त्रों में चार प्रकार का कर्म कलाप कहा गया है उनमें से कुछ कर्म तो इस प्रकार के होते हैं, जिनको हम पाप के कर्म कह सकते हैं, कुछ पुण्य कर्म कहे जाते है, कुछ कर्म इस प्रकार के होते हैं जो क्रिया मात्र से ही किये जाते हैं। उनका सम्बन्ध न पाप से ही है न कर्म से ही है। जिस प्रकार एक व्यक्ति बगीचे में सैर करता हुआ, अपने हाथ पैरों को चलायमान रखता है पर स्वाभाविक ही उसके मन में कई प्रकार के विचार आते रहते हैं और जाते रहते हैं, किन्तु यह सारा क्रिया कलाप जो उसकी बिना इच्छा के स्वाभाविक हो रहा है, कुशलाकुशल निक्रमाण के सिद्धांत के अनुसार कर्म के जाल में अन्तर्हित नहीं किया जा सकता है। इसलिये भगवान पतंजलि देव ने योग दर्शन में बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में कह दिया।

"कर्माशुक्ला कृष्णं योगिना त्रिविधिर्मितरेषाम"

उपरोक्त सूत्र का अर्थ यह है किये जाने वाले कर्म चार विभागों में विभक्त हैं, पाप के पुण्य, पाप के और पुण्य के मिश्रित और चौथे न पाप के और न पुण्य के केवल क्रिया रूप, क्रम कलाप के इस विभाजन से पुण्य के, पाप के, और पाप और पुण्य के मिश्रित कर्म आम संस्कार के जीवों के हुआ करते हैं। किन्तु योगियों के कर्म न पाप के होते हैं न पुण्य के होते हैं। योगी लोग कर्म करते हुये नहीं करते, खाते हुये नहीं खाते, पीते हुये नहीं पीते, सोते हुये नहीं सोते, उनका सब कर्म कलाप केवल क्रिया मात्र ही हुआ करता है।

यह तो हुई उन उत्कृष्ट योगियों के सिद्धांत की चीज जो योगी अपनी साधना के बल से कूटस्थ स्थिति में पहुँच चुके हैं। किन्तु जो लोग अभी सम्प्रज्ञात योग के अभ्यासी हैं वह लोग अपने समाधि जनित पुण्य के प्रभाव दृष्टी जन्म संवेदनीय कर्माशय तैयार करते हैं और इसके फलस्वरूप अपने निकृष्ट प्रारब्ध की यत्किंचित भुगतान में लेकर उज्जवल व प्रारब्ध के रूप में परिवर्तित कर लिया करते हैं। जिस प्रकार गंगा के पवित्र प्रवाह में पड़कर क्षुद्र जल प्रवाह के छोटे-छोटे नाले अपने आप को गंगा के रूप में परिवर्तित कर लेते हैं, इसी प्रकार से समाधि जनित उत्कृष्ट पुण्य के प्रभाव में क्लिष्ट कर्माशय का क्षुद्रभोग थोड़े समय में निवट कर उज्जवल पुण्य कर्माशय के फलस्वरूप में परिवर्तित हो जाया करता है। एक स्थान पर एक अच्छे योगाभ्यासी महात्मा ने निवास किया उन्होंने अपने ध्यानाभ्यास में देखा कि आगामी

प्रारब्ध भोग में उनको एक सर्प काट खायेगा। प्रारब्ध भोग के संस्कारों को देखकर वह यह जान ही गये थे कि उनको सर्प ने अवश्य काटना है तो उसके अनुसार उसको बचाने के लिये सरसक प्रयत्न किया किन्तु वह अपने आपको बचा नहीं सके। ठीक समय पर उनको सर्प ने काट ही लिया किन्तु वह विवेक ख्याति में थे और थे इसलिये वह सब प्रभाव उनके सूक्ष्म शरीर पर होकर निवट गये और वे पूर्ववत अपनी यर्थाथ स्थिति में आ गये, यह था उनके दृष्टीजन्म संवेदनीय कर्माशय को तैयार करने का उज्जवल उदाहरण, समाधि के पुण्य प्रभाव से सर्प काटने का फल थोड़े समय के भीतर ही भुगत गया और समाधि में ही श्री गुरूदेव के द्वारा जो दिव्य उपचार किया गया उसके फलस्वरूप वह तत्काल ठीक हो गये उनके शरीर में सर्प विष का आभास भी नहीं रहा। इसी प्रकार एक और योगाभ्यासी महात्मा का मुझे उदाहरण याद आता है, वह महात्मा योगाभ्यासी थे। विवेक ख्याति के और तीव्रता से बढ़ चुके थे। उन्होंने अपने ध्यानाभ्यास में एक दिन अनुभव किया कि ७ दिन बाद उनका आकस्मिक मृत्यु का संयोग बना जा रहा है उन्होंने ध्यानायोग में आसने गुरूदेव जी से पूछा प्रभो! मेरा यह मृत्यु संस्कार किसी प्रकार पूर्ण हो सकता है। श्री गुरूदेव जी ने उत्तर दिया बेटा इसके दूर करने में तो कोई कठिनाई नहीं है केवल मात्र तुम कल चावल नहीं खाना तो यह दुःख दूर हो जायेगा। यदि तुम चावल खाओ तो दही न खाना, दही खाओ तो कढ़ी मत खाना। किन्तु इन सब वस्तुओं से तुम्हारा संस्कार है तुम अवश्य ही खाओगे, किन्तु कोई चिन्ता की बात नहीं, तुम विवेक ज्ञान की ओर बढ़ रहे हो। इसलिये वह परम सद्गुरू तुम्हारी रक्षा अवश्य करेंगे, हुआ भी ऐसा ही। जब उनके प्राणान्त का समय आया, उन सर्वशक्तिमान ने उनके प्राणों की रक्षा की और उसके बाद दृष्ट जन्म संवेदनीय पुण्य से कर्माशय उपार्जित पुण्य से दिव्य प्रारब्ध का भोग आरंभ हुआ, इसलिये जो मनुष्य हर समय भाग्य ही भाग्य पुकारा करते है वह अपने अमूल्य जीवन को व्यर्थ खो जाया करते हैं, नीतिशास्त्र का सिद्धांत है कि उद्योगी पुरुष को लक्ष्मी प्राप्त होती है भाग्य-भाग्य कायर पुरुष कहा करते है, मनुष्य को अपने आत्म बल के आधार पर पुरुषार्थ करते रहना चाहिये। पुरुषार्थ करने पर भी यदि विफलता मिले तो समझ लेना चाहिये कि तुम्हारा पुरुषार्थ इस समय के कर्म विपाक को दबाने में दुर्बल रहा। उसके लिये फिर बार-बार प्रयत्न करना चाहिये, तप और स्वाध्याय के बल पर सभी कुछ करने की सामर्थ्य वाला बन सकता है। अतः अनुथ्य को सदा सर्वदा प्रयत्नशील रहना चाहिये जिससे वह इसी जन्म में परम श्रेयभागी बन सके।

सम्पादकीय

योग साधना एवं सिद्धियाँ

पिछले अंक के लेख में मैंने सिद्धियों के कितने प्रकार हैं ? यह बतलाने का प्रयास किया था। सिद्धियों का प्रादुर्भाव पाँच साधनों से होता है, वे हैं—जन्म औषधि मन्त्र, तप एवं समाधि। योग साधना की दृष्टि से ही सिद्धियों की श्रेष्ठता का आँकलन किया जाता है, यदि चित्त शुद्धि में इनकी भूमिका नहीं रहती है तो ये व्यर्थ से ही हो जाते हैं। इस सृष्टि में प्रारम्भ से ही हर युग में इस पृथ्वी पर बड़े—बड़े पराक्रमी एवं अद्‌भुत सिद्धि सम्पन्न दैत्य व दानव होते चले आये हैं। ब्रह्मादि देवों की आराधना करके इन्होंने असीमित शक्ति प्राप्त कर ली, किसी मानव अथवा देवता आदि से भी न मारे जाने का वरदान प्राप्त कर ये एक प्रकार से अजर—अमर हो गये। इस प्रकार से अनन्त शक्तियों को पाकर वे उन्मत्त हो गये और पृथ्वी पर वेदावरण, करने वाले मनुष्य देवता, गौ-ब्राह्मण एवं तपस्वियों पर तरह—तरह के अत्याचार करने लगे। यम—कुबेर अग्नि—वायु आदि देवों को भी अपने वश में करके अपने आप को ईश्वर मान लेने का भ्रम करने वालों में रावण का नाम सुविदित ही है। कंस के बारे में भी इसी प्रकार का कथा प्रसंग आता है कंस को कालनेमि के अंश से उत्पन्न माना जाता है। पूर्वकाल में समुद्रमंथन के समय पर कालनेमि और भगवान विष्णु में घोर युद्ध हुआ। भगवान ने उसे मार डाला। किन्तु शुक्राचार्य ने अपनी संजीवनी विद्या से पुनः जीवित कर दिया। श्री विष्णु से युद्ध करने के लिये वह पुनः उपाय ढूँढने लगा। वह मन्दराचल पर्वत के समीप जाकर तपस्या करने लगा। प्रतिदिन केवल दूब का रस पीकर ही उसने बहुत काल तक ब्रह्मा जी की आराधना की। अन्त में ब्रह्मा जी ने कहा—वर माँगो ! उसने कहा— इस संसार में पराक्रमियों में विष्णु अग्रगण्य हैं ऐसे किसी भी देवता से न मरूँ। ब्रह्मा जी ने कहा— इस जन्म में तो यह वरदान फलीभूत नहीं होगा, किन्तु अगले जन्म में तो इसकी सार्थकता रहेगी। वही कालनेमि अगले जन्म में कंस बना। उसने पृथ्वी के बड़े-बड़े वीर दानवों को परास्त कर उन्हें अपने आधीन कर लिया या मार दिया। एक बार उन्मत्त हुआ वह कंस महेन्द्र पर्वत पर पहुँच गया। उसने सात बार उस पर्वत को हिला दिया। यह देख परशुराम जी क्रोध में आ गये। उन्होंने कहा—यदि तू वस्तुतः पराक्रमी है तो इस शिवधनुष को उठाकर प्रत्यञ्चा चढ़ा ले। उसने धनुष उठा लिया और तीन चार बार टंकार की। परशुराम जी ने प्रसन्न होकर वह धनुष कंस को देते हुये कहा, इसे पूजा स्थल में रखना जो आकर इस धनुष को उठा कर तोड़ देगा वह स्वयं परब्रह्म होंगे तथा उनके हाथों से तुम्हारी मृत्यु होगी। द्वापर में भगवान श्रीकृष्ण ने कंस को मार दिया। मन में प्रश्न उठ सकता है कि जब उन लोगों में इतनी सिद्धि शक्तियाँ थी तो उन्हें योगी क्यों नहीं माना जाये ? इसका उत्तर होगा। ठीक है उन्होंने तप और मन्त्र सिद्धि के प्रभाव से देवताओं और स्थूल प्रकृति पर तो

अधिकार कर लिया किन्तु वृत्तियों पर नियन्त्रण न होने के कारण अथवा समाधि के अभाव में उन्हें योगी नहीं कहा जा सकता। उनकी ये जो सिद्धियाँ थीं वे समाधिजा सिद्धियाँ नहीं थीं। मन्त्र-तप आदि से प्राप्त सिद्धियाँ भी चित्त शुद्धि में सहायक हो सकती हैं। यदि साधक **सर्व भूत हिते रताः** के आदर्श से इन सिद्धियों से अपने आत्मिक बल को बढ़ाता चला जाये। किन्तु जो प्राणी शक्तियों को पाकर इन्हें दूसरे के अधिकार छीनने में, अथवा प्राणियों की हिंसा में लगाता है तो वह राक्षस कहलाता है। और उसका पतन ही होता है।

मनुष्य की दृष्टि में अजर-अमर होना अथवा चिरंजीवी होकर सहस्त्रों वर्षों तक जीवित रहना आश्चर्य की बात हो सकती है किन्तु सृष्टि क्रम को देखने पर इसमें कुछ आश्चर्य जैसी बात नजर नहीं आती। कुछ घण्टों या दिनों तक जीवित रहने वाले क्षुद्र कीट को यदि मनुष्य के सौ वर्ष की आयु के समय का हिसाब समझाया जाये तो उसके लिये यह महान आश्चर्य की बात है किन्तु हमें इसमें किसी प्रकार का आश्चर्य नहीं अनुभव होता। मनुष्य को पृथ्वी लोक से ऊर्ध्व लोकों में रहने वाले जीवों की आयु को जानकर अवश्य ही आश्चर्य होता है, स्वर्ग से ऊपर महः लोक, तपोलोक एवं जनलोक में निवास करने वाले योगी ध्यान की मुद्रा में हजारों कल्पों तक मुक्ति सदृश आनन्द में रहते हैं किन्तु वह भी अभी पूर्ण योगी न होने से मुक्त नहीं हुये हैं। क्योंकि ब्रह्मलोक तक के सभी प्राणी आवागमन के अधिकारी माने जाते हैं। लम्बी से लम्बी आयु होने पर भी यदि कोई योग साधन से विहीन है तो वह भी कामनाओं व कर्म संस्कार के जाल में फँसता ही चला जाता है। इससे निकल नहीं पाता। ईश्वर ने जीवों के लिये जन्म-मरण की व्यवस्था रखी है यह भी एक प्रकार से हमारे चित्त शोधन का कारण बनता है। जन्म-मरण के संकटकाल के समय जीव कई प्रकार से ईश्वर से अपनी भूलों की क्षमा याचना करता है एवं प्रायश्चित करता है। इस प्रकार से भी उसके संस्कारों का क्षय होता है। भगवान कृष्ण के समय में दुर्योधन जैसे अहंकारी व अन्यायवृत्ति के जीव थे यद्यपि वह भी भगवान के निकटस्थ सम्बन्धियों में ही था। भगवान ने उसे बार-बार समझाया कि वह दुर्वृत्तियों को छोड़ दे और न्याय के पथ पर चले। किन्तु विमूढ़ात्माओं को उपदेश देने पर क्रोध ही आता है। भगवान पाण्डवों का दूत बनकर दुर्योधन को समझाने हस्तिनापुर गये। दुर्योधन ने उनकी बात सुनना तो दूर उन्हें बन्दी बना लेने की ठान ली। किन्तु ये सर्वगत परमपुरुष उनकी पकड़ में आने वाले कहाँ थे ?

भगवान ने सोच लिया यह दुष्ट मानने वाला नहीं है अब इसके शरीर के नाश का समय आ गया है उसके साथ-साथ उस जैसे असंख्य आततायियों का वध भी आवश्यक था। अतः महाभारत अपरिहार्य हो गया। दुर्वृत्ति वाले मनुष्यों के लिये ईश्वर ने दो ही विकल्प छोड़े हैं। या तो वह अन्याय एवं दुराचरण को छोड़ न्याय पथ पर चले, अन्यथा मृत्यु का वरण करे। अस्तु। इस प्रकार से मृत्यु भी जीव के चित्त परिशोधन का एक मार्ग है। योगी लोग हिमालय की कन्दराओं में चित्त शुद्धि के लिये लगे रहते हैं। कई-कई महीनों अथवा वर्षों की समाधि वाले योगियों को भी पतन का भय रहता है। वे लोग जब समाधि से उठ जाते हैं तो कभी-कभी परस्पर विचार विमर्श के लिये भी एकत्रित होते हैं। ऐसे अवसरों पर राग-द्वेष

युक्त चित्त वाले योगी गुणवृत्तिविरोध के कारण एक दूसरे को वर–शाप भी दे डालते हैं जिसका भुगतान अवश्यम्भावी रहता है यह बात अलग है कि यह उसका भुगतान सूक्ष्म से करें अथवा स्थूल से। ब्रह्मा–विष्णु आदि देवों के चरित्रों में भी वर शाप का क्रम देखा जाता है। नारद के शाप से विष्णु जी का रामावतार ग्रहण करना सुविदित है। अन्यत्र भी स्थल-स्थल पर पुराणों में इस प्रकार से वर–शाप का झमेला देखने को मिलता है। पाँच प्रकार की सिद्धियों में कौन सी सिद्धि सर्वश्रेष्ठ है तथा कैवल्य में परमोपकारी है। इसका उत्तर देते हुये योगदर्शन में भगवान पंतञ्जलि जी ने **'तत्र ध्यानजमनाशयम्'** यह सूत्र दिया है। अर्थात् पाँच प्रकार की सिद्धियों से सिद्ध चित्तों में ध्यान अथवा समाधि के द्वारा परिष्कृत सिद्ध चित्त है वह ही कैवल्यमार्ग चित्त होता है क्योंकि ध्यान से सिद्ध उस चित्त में क्लेश व कर्म संस्कारों के बीज नहीं होते। समाधि से ही समस्त क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट संस्कारों का क्षय होता है। जब तक समाधिजन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा व विवेकख्याति का उदय नहीं हो जाता तब तक जन्म–मरण का क्रम बना ही रहता है। विवेक ख्याति के उदय होने पर **"तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कार प्रतिबन्धी"** अर्थात् विवेक ख्याति से उत्पन्न संस्कार समूह अन्य समस्त संसारमूलक संस्कारों को रोक देता है। उस समय विवेक प्रज्ञा के संस्कारों का ही प्रवाह चित्त में प्रवाहित होता रहता है। ये प्रज्ञा के संस्कार ही ऐसे होते हैं जो योगी को निर्जीव समाधि की ओर धकेल देते हैं। उस अवस्था में चित्त की समस्त कामनायें नष्ट हो जाती हैं उन कामनाओं का बीज भी चित्त में नहीं रहता। इसी अवस्था के लिये ही गीता में भगवान ने **'ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितम् बुधाः'** की बात कही है। इस प्रज्ञाकृत ज्ञान को सामने रखकर ही भगवान कहते हैं **'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'** अर्थात् इस संसार में इस ज्ञान के सदृश कोई पवित्र वस्तु नहीं है। यही वह ज्ञानाग्नि है जो सम्पूर्ण कर्म एवं संस्कार बीज को भून डालती है भून दिये गये बीज पुनः प्ररोहण में समर्थ नहीं हुआ करते। चित्त को बिल्कुल वासनाशून्य बनाना ही योग का लक्ष्य है। प्रज्ञाविवेक के खुल जाने पर परावर दर्शन की स्थिति आती है। **'क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे'**। उस परावर दर्शन के साथ ही योगी के सम्पूर्ण क्लेश–कर्म संस्कार क्षय हो जाते हैं। परावर दर्शन का एक मात्र उपाय समाधि योग है।

इस प्रकार से संक्षेप में कहा जा सकता है कि मन्त्र, औषधि, तप आदि से भी कर्म संस्कारों के स्थूल रूप का क्षय अवश्य होता है अतः इनकी उपयोगिता है। किन्तु स्वयं चित्त का ही अपने कारण में लय कराने की क्षमता समाधि की अवस्था में ही सम्भव होती है। योग के अखण्डात्मक एवं अव्ययात्मक स्वरूप की उपलब्धि हो जाने पर ही योगी अपने चित्त को भी अव्यक्त में विलय करके कैवल्य मोक्ष का अधिकारी बनता है। मन्त्र तप आदि अनुष्ठानों के प्रभाव की अपनी सीमा होती है। समाधि की अवस्था में ही योगी परम तत्व में प्रवेश किया करता है सूक्ष्मातिसूक्ष्म परतत्व में समाधि से ही प्रवेश पाया जा सकता है इसका अन्य कोई उपाय नहीं है। अतः समाधि ही योगियों का परम लक्ष्य रहता है।

* * *

योगयुक्त आहार-विहार

प्रोफेसर आचार्य चन्द्रहास शर्मा

यो साधना जिस उत्साह से प्रारम्भ करते हैं अन्त तक वही उत्साह बना रहे तो छः माह में योग सिद्ध हो सकता है। पर ऐसा हो नहीं पाता। 'सिर मुड़ाते ही ओले पड़ने' की कहावत चरितार्थ होने लगती है। जीभ का चटखारापना (जिह्वा लौल्य) योग साधना का सबसे बड़ा विघ्न है। जिस वाणी पर और जीभ के स्वाद लेने की प्रवृत्ति पर आत्म नियन्त्रण नहीं है, वह रागद्वेष और नानाप्रकार के शारीरिक रोगों का शिकार हो जाता है। योगसूत्र में योग अन्तरायों की परिगणना में व्याधि को सर्वप्रथम स्थान दिया है। शरीर जब तक स्वस्थ नहीं है तब तक योगाभ्यास कहाँ होगा। मन हर समय शरीर पर केन्द्रित बना रहेगा। देह बुद्धि के रहते मन सूक्ष्म जगत् के विज्ञान का अनुभव कहाँ कर पायेगा। समय वे समय खाना, एक समय का खाया हुआ जब तक जीर्ण नहीं हुआ (पचा नहीं) तब तक दूसरी बार खा लेने और सामाजिक व्यवहार के नाते हर आधे घण्टे बाद चाय बिस्कुट चरते रहने से अपच याने अजीर्ण, खट्टी डकार, गैस, आम, हृदयरोग न जाने कौन-कौन से रोगों के तोहफे हम जानबूझ कर लेने दौड़ते रहते हैं। हमारे शरीर में इतनी शक्ति नहीं बचती कि प्राणों की अपरिमिति ऊर्जा को जो कुछ योग-क्रियाओं (प्राणायाम, ध्यान, कुम्भक आदि) के फलस्वरूप उत्पन्न होती है, उसे संचित कर सकें। हमारी शक्ति जठराग्नि के आधीन है। जठराग्नि समान स्थिति में रहे तब तक हमारी मन और प्राणों की गति इच्छित दिशा में ऊर्ध्व गमन करती है। यदि जठराग्नि मन्द हो जाती है तो जो कुछ भी खाया जाता है वह अनपचे ही मल के रूप में निकल जाता है और कुछ अंश आम के रूप में आन्तों में संचित होता जाता है। जिससे आमवात रोग की उत्पत्ति होती है। यदि जठराग्नि अधिक प्रबल होती है तो मस्तक रोग हो जाता है और पित्त उग्र हो जाता है जिससे चर्म रोग प्रारम्भ हो जाते हैं। मन्दाग्नि से वात और कफ प्रधान रोग होते हैं। इसलिए जठराग्नि को सम रखना आवश्यक है। जठराग्नि को सम रखने के लिए जीभ को नियन्त्रण में रखना आवश्यक है।

आयुर्वेद का सिद्धांत है कि **'रसमूलानि व्याधयः'** रस का आचार्य ने रसना (जीभ) अर्थ किया है। **'रसनार्थो रसः'** (चरक) **रसायत आहारः** (सुश्रुत) अर्थात् जीभ की कृपा से आहार संयम संभव है। जब तक जीभ अयुक्तियुक्त आहार का सेवन करती रहेगी व्याधियाँ दस्तक देती रहेंगी। असमय में अयुक्ति युक्त आहार सेवन के अतिरिक्त विषय सेवन तथा आर्द्रता (हर समय गीले रहना) भी है। गोपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि **'ऋतु सन्धिषु वै व्याधिर्जायते'** प्रत्येक ऋतु के अन्त में और दूसरी ऋतु के प्रारम्भ में बीच की सन्धिकाल में प्रायः व्याधियों की उत्पत्ति होती है। इसलिए समझदार साधक एक समय स्वल्प भोजन करते हैं। जिससे जठराग्नि मन्द न हो। ऐसा समय कार्तिक तथा फाल्गुन में विशेषरूप से आता है।

जो नित्य भूख लगने के समय भोजन नहीं करता, ऐसा अवेलाभोजी भी व्याधिग्रस्त रहता है। जो आधे पेट से अधिक भाग अन्न से भर लेता है। और हर समय खाता ही रहता है उसे भी योग सिद्ध नहीं होता। प्राचीन सिद्धांत है– **'योगो वहवासिने मिथ्या'** अतिभोजी भी हो और योग साधना में सफलता चाहे ये दोनों चीजे साथ नहीं चल सकतीं। अतिभोजी को भी मन्दाग्नि हो जाती है। **'रोगः सर्वेऽपि मन्दाग्नौ'** अर्थात् मन्दाग्नि सभी रोगों की जननी है। किसी भी हालत में मन्दाग्नि न होने पावे। इसकी सावधानी करने वाला योग साधना में सफल हो सकता है। मन्दाग्नि से ही प्रमेहादि विकार होते हैं जिससे ब्रह्मचर्य की साधना नहीं हो पाती। ब्रह्मचर्य से वीर्य रक्षा होती है और जब वीर्य आसन प्राणायाम, बन्ध मुद्राओं द्वारा पूरे शरीर में व्याप्त बना रहता है। तो वही ओज रूप में परिणित होता है। ओज पुनः तेज में और तेज आत्म प्रकाश में परिणित होकर आत्मसाक्षात्कार की भूमिका में ले जाने में सहायक बनता है। निर्वीय का संकल्पबल कमजोर होता है। संकल्पशक्ति की दृढ़ता के बिना योगाभ्यास में उत्साह नहीं रह पाता। इसलिये साधक के लिए आवश्यक कर्तव्य है कि **'हिताशी स्यान्मिताशी स्यात् कालभोजी जितेन्द्रियः'**। अर्थात् हितकारक पदार्थों को सीमित मात्रा में खूब भूख लगने पर ही खाना पथ्यकर है। हितकारक क्या है ? यह प्रायः कम लोग ही जानते हैं जबकि पशु ऐसा भोजन करना पसन्द करते हैं जो हितकारक न हो। अहितकारक पदार्थ वे हैं जो वायु और पित्त को कुपित कर प्राणों को चंचल बना देते हैं विरुद्ध पदार्थों को एक ही समय में खाने से उत्तम पदार्थ भी अहितकर सिद्ध होते हैं। जैसे—दूध और दही या मट्ठा, मूली और दूध, मधुर तथा खट्टे पदार्थ एक साथ न खायें। मधुर और कटु रस के पदार्थ भी एक साथ खाना वीर्य विरुद्ध पदार्थ अहितकर होते हैं भोजन के समय प्रसन्न मन होना चाहिये। स्थान, पात्र का भी हमारी जठराग्नि पर प्रभाव पड़ता है। बिना बोले शान्त स्थिति में किया भोजन ठीक पचता है। ईर्ष्या, भय, क्रोध, लोभ द्वेष रुग्णावस्थाग्रस्त मानसिकता में किया भोजन भी नहीं पचता, भोजनोपरान्त बैठ जाने से आलस्य आता है और दायें करवट लेट लेने से शरीर पुष्ट रहता है, चहलकदमी करने से दीर्घायु प्राप्त होती है और भोजन करते ही दौड़ने वाले के पीछे मृत्यु दौड़कर पीछा करती है। **मृत्युः धावति धावतः**—यह उक्ति प्रसिद्ध है। यदि यह सन्देह हो कि भोजन किया जाय या न किया जाय तो न करना हितकर है। शौच के सम्बन्ध में इसके विपरीत निर्णय लेना चाहिये अर्थात् इच्छा न हो तो भी हाजत जाना हितकर है। भोजनोपरान्त एक घंटे तक व्यायाम, मैथुन, दौड़ना, जल पीना, मल्ल युद्ध, गाना और अध्ययन ये कर्म न करें क्योंकि मस्तिष्क का रक्त भी भोजन पचाने के लिए आँतों की सहायता करता है।

भोजन के सामान्य नियमों के पालन करने पर व्याधियाँ प्रज्ञापराध से हो जाया करती हैं। ऐसी स्थिति में सामान्य औषधियों का सेवन योग विघ्नों को दूर करने में सहायक है। उन औषधियों में गिलोय, पीपल, हरड़ और सौंठ अति उपयोगी है। हरड़ को आयुर्वेद में हरीतकी कहा जाता है। यह अनेक प्रकार की होती है। आकार भेद से इसके दो प्रकार हर स्थान

पर उपलब्ध होते है—छोटी और बड़ी। इसके नाम के सम्बन्ध में कहा जाता है कि **'सर्वरोगांश्च हरते तेन ख्याता हरीतकी।** सर्व प्रकार के रोग हरने के कारण इसका नाम हरीतकी है। पौराणिक मान्यता है कि इन्द्र अमृत का पान कर रहे थे। उसमें से कुछ बूँदे पृथ्वी पर गिर गयीं। उन्हीं से हरीतकी का जन्म हुआ। अमृतमयी होने के कारण यह सभी औषधियों में श्रेष्ठ मानी जाती है। इसके जन्म के सम्बन्ध में एक अन्य मान्यता है कि भगवान भूतभावन शंकर के भवन में जन्म लेने के कारण स्वभावतः हरे रंग की होने तथा सर्व रोगहर होने से यह हरीतकी नाम से प्रसिद्ध है। इसके सम्बन्ध में आयुर्वेद शास्त्र की यह युक्ति सर्वत्र प्रसिद्ध है कि—

यस्य गृहे माता नास्ति तस्य माता हरीतकी।'

अर्थात्—जिसके घर माता नहीं है उसकी माँ हरीतकी है। **'हरीतकी मनुष्याणाम् मातेव हितकारिणी। कदाचित्कुप्यते माता नोदरस्था हरीतकी।।** (नवनीतक)

हरीतकी माता के समान हितकारिणी है। माता तो कभी-कभी बच्चों पर क्रुद्ध भी हो जाती है किन्तु उदरस्थ हरीतकी वायु प्रकोप दूर ही करती है, उत्पन्न कभी नहीं करती।

हरड़ के सम्बन्ध में ब्रह्मा जी ने कहा है—

'हितं हयानां लवणं प्रशस्तं जलं गजानां ज्वलनं गवां च।
हरीतकी श्रेष्ठतमा नराणाम् चिकित्सते पंकजयो निराह।।

औषधियों में हरीतकी मनुष्यों के लिए उसी प्रकार उत्तम है जिस प्रकार घोड़ों के लिए नमक, हाथियों के लिए जल तथा गाय बैलों के लिए अग्नि। अन्यत्र भी नीति श्लोकों में हरीतकी की प्रशंसा की गयी है—

'हरिं हरीतकीं चैव गायत्रीं च दिने-दिने।
मोक्षारोग्य तपः कामश्चिन्तयेद् भक्षयेज्जयेत्।।

मोक्ष, आरोग्य और तप के इच्छुक व्यक्ति को प्रतिदिन विष्णु हरीतकी तथा गायत्री का क्रमशः चिंतन, भक्षण और जप करना चाहिये।

'आषाढी कार्तिकी माघी वचा शुण्ठी हरीतकी।
गयायां पिण्ड दानेन पुण्या श्लेष्म हराऽनृणी।।

वचा, सोंठ और हरड़—आषाढ़ी, कार्तिकी माघी (एकादशी) पुण्यदायक होती है। वचा सोंठ और हरड़ तीनों कफनाशक है और गया में किया गया पिण्डदान मनुष्य को पितृऋण से मुक्त करता है। 'लेष्मा (कफ) और दुर्जन मनुष्य मधुरता से भड़क उठते है और कटु रस से शान्त हो जाते हैं। मधुर, अम्ल, लवण—ये वायु नाशक हैं, तिक्त, उष्ण, कषाय रस कफ नाशक है। कषाय तिक्त मधुर—पित्त कारक है।

जैसे वायु के संयोग से अग्नि प्रज्वलित हो उठती है वैसे ही गुड़ के साथ हरड़ वीर्यवर्द्धक होती है। विभिन्न ऋतुओं में हरड़ का सेवन निम्नलिखित संयोगों से करने का

आयुर्वेदीय विधान है।

'ग्रीष्मे तुल्यगुडां, सुसैन्धवयुतां मेघा वनद्धाम्बरे',
सार्धं शर्करया शरद्यमलया शुण्या सुधारागमे।
पिप्पल्या शिशिरे, वसन्त समये क्षौद्रेण संयोजितां
राजन् प्राप्य हरीतकी मिव रुजो नश्यन्तु ते शत्रवः।।

ग्रीष्म ऋतु में समभाग गुड़ के साथ वर्षाकाल में में धानमव के साथ शरद ऋतु में शुभ शक्कर के साथ, ठंडी में सोंठ के साथ, शिशिर ऋतु में पीपल के साथ, वसन्त में मधु के साथ, हरीतकी सेवन से रोग नष्ट होते हैं। हरीतकी का माहात्म्य अनन्त है। वैद्यक ग्रन्थों में इसका भूरिभूरि गुण जान लिया गया है। अनुपान भेद से यह भिन्न-भिन्न रोगों में हितकारी है। गैस तथा कब्ज में भोजन के एक घण्टे पूर्व मुलैठी के साथ कुछ दिन एक चम्मच दोनों मिलाकर लेने से इससे छुटकारा मिल जायेगा। हरड़ के सम्बन्ध में यह दावा बिल्कुल ठीक ही है कि—

'न सोऽस्ति रोगो भुवि मानवानाम्'
हरीतकी यं न जयेत् प्रसह्य।
यशस्विनी तामृत प्रसूतां,
प्रयोजयेद् सर्वत एव धीरः।।

पृथ्वी पर मनुष्यों का ऐसा कोई रोग नहीं है जिसको हरीतकी अपने प्रभाव से जीत न सके। अतः बुद्धिमान मनुष्य सभी रोगों में इस अमृत से उत्पन्न हरीतकी को प्रयुक्त करें। छोटी हरड़ को शोधकर सेवन करने से अधिक लाभ होता है।

छोटी हरड़ का शोधन करने की विधि इस प्रकार है। हरडें लेकर साफ कर लें फिर चौबीस घण्टे एक मिटटी के पात्र में देशी-गाय के मूत्र में भिगोकर रखें। इस प्रकार एक सप्ताह तक मूत्र बदलकर भिगोते रहें। उसके बाद इसी प्रकार मट्ठा (छाछ) में उन्हें छाया में सुखा लें। जब छाया में सूख जाये फिर उन्हें मन्दी-मन्दी आग से कढाई में डालकर एरण्ड तेल (Casteroil) या देशी घी में उलट-पुलट कर सेकें। जब कुछ-कुछ लाल हो जायें उतार कर ठंडा कर बारीक पीस लें। इनमें काला नमक, काला जीरा, पीपल मिलाकर चूर्ण बना लें। यदि गोलियाँ बनाना चाहें तो नीबू के रस में घोंटकर गोलियाँ बना लें भोजनोपरान्त सेवन करने से अफारा, खट्टी डकार, गैस जैसी बीमारियाँ नहीं होंगी।

बवासीर के रोगियों को यह रामबाण सिद्ध होगी। आयुर्वेद का अभ्यारिष्ट हरडों का ही आसव है जो कि बवासीर के रोगियों को हितकर है। बड़ी हरड़ का मुरब्बा बनाकर खाना भी हितकर है। हरड के साथ मट्ठे (छाछ) का सेवन परम कल्याण कारक है। मट्ठा (तक्र) इस पृथ्वी पर अमृत है। जो तक्र का सेवन करते रहते हैं उन्हें उदर रोग नहीं होते। सब रोगों की जड़ उदररोग है। लोक कहावत है कि

'पेट नरम पैर गरम सिर ठंडा। उसके घर में वैद्य आवे तो खाये डंडा।

अर्थात्—ये तीनों स्वस्थ मनुष्य के लक्षण हैं। यदि उदर में वायु कुपित नहीं होगी तो पित्त और कफ अपने आप ठीक रहेंगे। जैसे हवा बादलों को उड़ाकर जहाँ-चाहे वहाँ ले जाती है उसी प्रकार पित्त और कफ का शरीर में उचित स्थिति में रखना वात का ही काम है। इसलिये सफल चिकित्सक वह होता है जो रोगी की अग्नि और वात को ठीक रख सकता है। तक्र का सेवन भोजन के अन्त में करने वाला कभी रोगी नहीं होता।

भोजनान्ते पिबेत्तक्रम् वासरान्ते पिबेत्पयः।
निशान्ते च पिबेत् वारि त्रिभिर्रोगो न जायते।।

प्रातः जलपान, रात्रि को दुग्धपान और भोजनान्त में तक्रपान तथा स्नेहयुक्त भोजन सदा पथ्यकर है। तक्र के विषय में कहा गया है—

अमरत्वं यथा स्वर्गे देवानाममृताद्भवेत्।
तक्राद् भूमौ तथा नराणाममरत्वम् हि जायते।। (क्षेमकुतूहल)
'अमृतं दुर्लभं नृणां देवाना मुदकं तथा।
पितृणां दुर्लभः पुत्रः तक्रं शक्रस्य दुर्लभम्।।

स्वर्ग में देवता अमृत के कारण अमर हो जाते हैं वैसे ही पृथ्वी लोक में मनुष्य यदि तक्र का सेवन करें तो अकालकाल कवलित होने से बच सकते हैं। जैसे मनुष्यों के लिए अमृत देवताओं के लिए जल तथा पितरों के लिये पुत्र वैसे ही इन्द्र के लिए तक्र दुर्लभ होता है। तक्र की महिमा ऐसे ही है इससे रोग जड़ से नष्ट हो जाते हैं। आयुर्वेद का सिद्धांत है कि **'तक्रेण दग्धाः न भवन्ति रोगाः।'** अर्थात्—मट्ठे के सेवन से रोग जल जाते हैं, फिर दुबारा उनका जन्म नहीं होता। एक कवि ने तक्र की महिमा को अपने ढंग से व्यक्त किया है—

कैलासे यदि तक्रमस्ति गिरिशः किं नीलकण्ठो भवेद्।
वैकुण्ठे यदि कृष्णतामनुभवेदद्यापि किं केशवः।।
इन्द्रो दुर्भगताम् क्षयं द्विजपतिर्लम्बोदरत्वं गणः।
कुष्ठित्वं च कुबेर को दहनतामग्निश्च किं विन्दति।।

कैलास में यदि तक्र होता तो भोलेबाबा विषपान करने के बाद नीलकंठ क्यों बनते ? वैकुण्ठ में यदि तक्र होता तो श्रीकृष्ण काले क्यों बन जाते ? इन्द्र भगयुक्त, चक्र क्षययुक्त (T.B.) गणपति तोंद युक्त कुबेर कुष्ठयुक्त और अग्निदेव दाह युक्त क्यों रह जाते ?

अर्थात्—विष प्रभाव शरीर का कालापन, शरीर के घाव, टी. बी., उदर वृद्धि (तोंद निकलना) कोढ़ तथा शरीर में जलन— इन सब रोगों का शमन करने की सामर्थ्य एकमात्र तक्र सेवन में है। हेमकुतूहल ग्रन्थ में वैद्य ने राजा को परामर्श दिया कि गौरवर्ण युवतियों के हाथ से मथे हुए नवनीत (मक्खन) सेंधा नमक और हींग से संयुक्त मधुर तक्र का पान करोगे तो सब रोगों से मुक्त हो जाओगे।

'शशि कुन्द समुज्जवल शंखनिभं युवती कर निर्मित निमथितम्
घृत सैन्धव हिंगुयुतं मधुरं पिव तक्रमहोनृप रोगहरम्।।

तक्र के अनन्त गुण हैं। उनमें से कुछ गुण इस प्रकार हैं—

तक्रं रुचिकरं बल्यं दीपनं पाचनं परम्।
उदरे ये गदास्तेषां नाशनं तृप्तिकारकम्।
तक्र वात हरं रूच्यं शूलाध्मानार्शसां हितम्।
अग्नि संजन नं श्रेष्ठं कफ पित्त निवर्हणम्।।

अर्थात् मट्ठा वातनाशक, भोजन की रुचि बढ़ाने वाला, शूल (Colie) आध्मान (अफारा) (Tympantitis) और बवासीर में हितकर और जठराग्नि को दीप्त करने वाला है। यह अन्नत पाचक समस्त उदर रोगों का नाशक और तृप्ति कारक है। यह वात पित्त कफ तीनों से होने वाले विकारों को शमन करने वाला है। इसका अनुपान भेद से भिन्न-भिन्न रोगों में लाभ होता है।

'वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं स्वादु पित्ते सशर्करम्।
पिबेत्तक्रं कफे चापि व्योषक्षार समन्वितम्।।

अर्थात्—वात विकार में मट्ठा खट्टा हो और सैंधा नमक के साथ लेना चाहिये। पित्त विकार में मट्ठा मधुर और शक्कर मिलाकर लेना हितकर है। कफ विकार में व्योष (त्रिकटु-सोंठ, मिरच, पीपल) और क्षार के साथ लेना हितकर है। तक्र सेवन बड़े भाग्य से मिलता है। गोदुग्ध से बना तक्र मिलता रहे तो और किसी औषधि की आवश्यकता ही नहीं। कहा जाता है कि तक्र सेवी कदापि रोगपीड़ित नहीं होता। तक्र चिकित्सा से नष्ट किये गये उदर रोग फिर कभी उत्पन्न नहीं होते, जैसे स्वर्ग में देवता नीरोग रहने के लिए अमृत पान करते रहते हैं। उसी तरह इस मर्त्यलोक में स्वस्थ रहने के लिए तक्र सेवन करते रहना चाहिये।

'न तक्र सेवी व्यथते कदाचिन्।
न तक्रदग्धा प्रभवन्ति रोगाः,
यथा सुरांणाममृतं प्रधानं
तथा नराणाम् भुवि तक्रमाहुः।

योग साधना में उदर जन्य विघ्न दूर करने के लिए तक्र खीरा का रायता, बथुआ का रायता, पोदीना का रायता बूँदी का रायता, हरीमिर्च और अजवायन का रायता, लौकी का रायता, आलू का रायता, बैंगन का रायता, कद्दू का रायता, आदि-आदि बनाकर दैनिक भोजन के साथ लिए जा सकते हैं।

इसके अतिरिक्त अमृता-गुडूची (गिलोय) का रस, दूब घास का रस, आमले का रस, तुलसी का रस, पीपल आदि शहद के साथ सेवन करने से योग साधना निर्विघ्न चलती रहती है।

तुलसी कफनाशक, कृमि नाशक और दुर्गन्ध नाशक है। हिक्का, कास, विष, श्वास पार्श्वशूल विनाशक है। पित्त को बढ़ाने वाली कफ और वातघ्न सुरस तथा दुर्गन्ध दूर करती है। कफ नाशक होने से तुलसी का स्वरस शहद के साथ वमन, खांसी, श्वास, जुकाम आदि रोगों में प्रयुक्त होता है। कृमि नाशक होने से उसका स्वरस छाजन (Eczema) दाद (Ring worm) खुजली इत्यादि रोगों में तथा व्रण शोधन और रोपण में इसका उपयोग किया जाता है। ※※※

सद्गुरु मानसिक रोगों के वैद्य हैं

ब्र. ओमप्रकाश (लखनऊ)

त्रिभुवन गुरु भगवान शिव ने सर्वप्रथम श्री रामचरित मानस ग्रन्थ की रचना अपने मन में की और फिर उपयुक्त समय पाकर उन्होंने पार्वती जी को इसकी कथा सुनायी है। सर्वप्रथम मन में अवतरित होने के कारण ही योगेश्वर भगवान शंकर ने इसका नामकरण 'रामचरित मानस' किया जैसा कि राम चरित मानस में पाया जाता है

रचिमहेश निज मानस राखा। पाय सुसमउ शिवासन भाषा।।
तातें राम चरित मानस वर। धरेउ नामहिय हेरि हरिष हर।।

किन्तु ग्रन्थ के अन्त में मानस-रोग और उनके उपसमन का उपाय बताकर नामकरण को एक भिन्न अर्थ भी दे दिया गया। मानस रोगों की चिकित्सा का वर्णन करते हुए जिस सद्गुरु वैद्य की आवश्यकता का वर्णन किया गया है उसके लिए आदि गुरु भगवान शिव से बढ़ कर अधिकारी और कौन हो सकता है। देवाधिदेव भगवान शिव को त्रिभुवन कहा गया है।

तुम्ह त्रिभुवन गुरु वेद बखाना। आन जीव पामर का जाना।।

इस प्रकार त्रिभुवन गुरु के द्वारा विरचित यह रामचरित मानस मानव-मन की विकृतियों को विनष्ट करने के लिए सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है इस रामचरित मानस का उपक्रम और उपसंहार मन की समस्याओं से संबध है इसे अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। मानसिक रोगों की समस्या मनुष्य के शारीरिक रोगों की तुलना में कहीं अधिक जटिल है और सच तो यह है कि शरीर के अधिकांश रोगों का सम्बन्ध भी मानसिक रोगों से है। जहाँ शारीरिक रोग स्वयं रोगी को कष्ट पहुँचाते हैं वहाँ मानसिक रोगों से ग्रस्त रोगी न केवल अपने लिए अपितु सारे समाज और विश्व के लिए घातक बन जाता है। इसलिए मानसिक रोगों की चिकित्सा में सारे समाज का अपना स्वार्थ निहित है। काक भुशुण्डि जी ने शारीरिक रोगों का विश्लेषण आयुर्वेद मान्यता के आधार पर ही मानस रोगों का निदान भी प्रस्तुत किया है। आयुर्वेद शास्त्र मनुष्य के शरीर में त्रिविध धातुओं की उपस्थिति का वर्णन करता है इन्हें उसने वात, पित्त और कफ का नाम दिया है। जब शरीर में यह त्रिधातु समत्व की स्थिति में होती है तब व्यक्ति स्वस्थ रहता है किन्तु जब इसमें से कोई धातु विषम (कम या अधिक) हो जाती है तब व्यक्ति के शरीर में रोगों का प्रादुर्भाव होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि धातुओं का वैषम्य ही रोग है और धातु साम्य स्वस्थता है **"रोगस्तु धातु वैषम्यं धातु साम्यं आरोगिता"** शरीर की ही भाँति मन में भी त्रिविधि धातुओं की कल्पना की गयी है। काम वात है, कफ की तुलना

लोभ से की जा सकती है और हृदय को जलाने वाला यह क्रोध ही पित्त के सदृश है जैसा कि मानस में कहा भी गया है–

काम वात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा।।

पित्तः पंगुः कफः पंगुः पंगवो मल धातवः।
वायुना पत्र नीयन्ते, यत्र वर्षन्ति मेघवत्।।

आयुर्वेद शास्त्र की यह मान्यता है कि कफ और पित्त स्वयं गति शून्य है वात ही प्रेरक के रूप में कफ और लोभ को जिस दिशा में प्रेरित करता है वे उसी दिशा में चलने के लिए बाध्य हो जाते है। मानसिक दृष्टि से काम, क्रोध और लोभ की भी ठीक ऐसी स्थिति है। लोभ और क्रोध स्वयं गति शून्य हैं मनुष्य के अन्तर मन में उठने वाला काम ही लोभ और क्रोध का प्रेरक बनता है। सर्व प्रथम व्यक्ति के मन में जब कामना का जन्म होता है तभी उसकी परणति लोभ अथवा क्रोध के रूप में होती है। कामनाओं की पूर्ति होने पर लोभ बढ़ता जाता है और कामना की पूर्ति में बाधा पड़ती है तब व्यक्ति क्रुद्ध हो जाता है। इस तरह व्यक्ति सारा जीवन काम, क्रोध और लोभ के द्वारा सचालित होता है। सर्वथा काम, क्रोध और लाभ से शून्य जीवन की कल्पना भी नही की जा सकती। कफ, वात और पित्त भले ही विकृतियों को जन्म देते हैं किन्तु कोई भी चिकित्सक उन्हें पूरी तरह विनष्ट करने का प्रयास नहीं करता क्योंकि चिकित्सक को यह ज्ञात है कि इनके अभाव का तात्पर्य स्वयं व्यक्ति के शरीर का विनष्ट हो जाना है। इसलिए वह औषधि के द्वारा इनमें समत्व उत्पन्न करने की चेष्टा करता है। इस समूची सृष्टि में जो गति शीतला और कर्म की प्रेरणा दिखायी देती है वह काम के द्वारा ही संभव है। लोभ की प्रवृत्ति मनुष्य को संचय की प्रेरणा प्रदान करती है सामाजिक जीवन की सुरक्षा के लिए लोभ की वृत्ति भी आवश्यक है। अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करने की भावना भी क्रोध के द्वारा ही उत्पन्न होती है। यदि मनुष्य के अन्तःकरण में आक्रोश की भावना पूरी तरह समाप्त कर दी जाय तो मनुष्य के जीवन से अन्याय मिटाने की वृत्ति भी समाप्त हो जायेगी। इसी तरह काम के अभाव में कर्म का सुसम्पादन भी असम्भव है। इस काम, क्रोध और लोभ को मन में उपस्थिति न केवल जीवन की बाध्यता है अपितु उसकी आवश्यकता भी है। किन्तु इनका अतिरेक व्यक्ति और समाज दोनों के लिए घातक सिद्ध होता है। इनकी सन्तुलित स्वीकृति व्यक्ति और समाज के लिए परम आवश्यक है। पर यह सन्तुलन रख पाना कितने व्यक्तियों के लिए ही सम्भव होता है। ऐसे व्यक्ति बहुत बड़ी संख्या में हो सकते हैं जिनके शरीर में वात, पित्त और कफ का सन्तुलन विद्यमान हो, पर ऐसे व्यक्ति को ढूंढ पाना कि जिनमें काम, क्रोध और लोभ, क्रोध और लोभ का सन्तुलन बना हो असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। फिर व्यक्ति के शरीर में बहुधा त्रिविध धातुओं में से कोई एक विकृत होती देखी जाती है। इसलिए चिकित्सक के लिए उनकी चिकित्सा

करना अधिक सरल होता है परन्तु जब त्रिविध धातुएँ एक साथ कुपित हो जाती हैं तब चिकित्सक के लिए उनकी चिकित्सा करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। इसे आयुर्वेद में सन्निपात की स्थिति कहा जाता है। सन्निपात रोगी बहुधा मृत्यु का ग्रास बन जाता है। प्रत्येक धातु का स्वभाव भिन्न-भिन्न प्रकार का है इसलिए एक धातु के लिए दी जाने वाली औषधि दूसरी धातु के लिए प्रतिकूल सिद्ध हो सकती है। चिकित्सक औषधि के साथ-साथ पथ्य में वह ऐसे भोजन का विधान करता है। जिनमें समत्व विद्यमान हो। किन्तु मानस रोगी की चिकित्सा इसलिए दुरूह हो जाती है। क्योंकि इनमें अधिकांश व्यक्तियों के मन में त्रिविध विकार एक साथ विद्यमान रहते हैं। ऐसी स्थिति में मानसिक रोगों का उपसमन करने के लिए जिन साधनों का उपदेश दिया गया है। वे यदि एक दिशा में प्रभावशाली सिद्ध होते हैं तो दूसरी मानसिक वृत्ति के लिए घातक सिद्ध होते हैं। दृष्टान्त के लिए काम विकृति को ही ले लें। कामवासना के उपसमन के लिए शास्त्रों में संयम और ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया गया है। ब्रह्मचर्य का यथोक्त रीति से पालन से काम का उपशमन सम्भव है। लेकिन ब्रह्मचर्य व्रत में निरत रहने वाले व्यक्ति क्रोधी स्वभाव के पाये जाते हैं। लोमश, दुर्वाशा और परशुराम आदि के चरित्र इसके दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। भले ही वे वन्दनीय महापुरुषों के रूप में देखे जाते रहे हैं लेकिन क्रोध के कारण इनसे ऐसे कार्य भी हो जाते हैं जो समाज के लिए अकल्याणकारी सिद्ध हुए हैं। पर सन्तुलन की पूर्णता विरले ही महापुरुषों में पायी जाती है। श्रीरामचरित मानस का दृष्टिकोण मनुष्य में समग्र सन्तुलन की सृष्टि करना है।

सुनहु तात अब मानस रोगा। जिनते दुख पावै सब लोगा।।
मोह सकल व्याधिन का मूला। तिन्हते पुनि उपजहि बहु शूला।।

चिकित्सा शास्त्र का यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि चिकित्सक स्वयं अपनी चिकित्सा नहीं कर सकता। इसलिए बड़े से बड़ा चिकित्सक भी अपनी चिकित्सा के लिए दूसरे चिकित्सक का आश्रय ग्रहण करता है, भले वह उससे योग्यता में अधिक ही क्यों न हो। मानस रोगों में तो यह सिद्धांत और भी आवश्यक प्रतीत है। व्यक्ति को अपनी मानसिक विकृतियों का सही परिज्ञान हो ही नही पाता है। मानस रोगी को अपनी विकृति स्वयं न दिखाई देकर अन्य व्यक्तियों में दिखायी देती है। मानस के प्रारम्भ में नारद जी के चरित्र में इसी दुर्बलता का दर्शन होता है। काम विजय के पश्चात नारद जी में अहं की जिस विकृत का उदय है उसके परिणाम स्वरूप वे भगवान शंकर में ही ईर्ष्या वृत्ति की कल्पना करने लग जाते हैं स्वभावतः जब रोगी को अपने रोग का ज्ञान होता है तब वह चिकित्सक की खोज करता है। इसलिए मानस रोगों से ग्रस्त व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह सद्गुरु वैद्य का आश्रय ग्रहण करे।

सद्गुरु वैद्य वचन विश्वासा। संयम यह न विषय कर आशा।।

रामचरित मानस की दृष्टि में विश्व में ऐसा कोई व्यक्ति ही नहीं है जिसमें यह रोग किसी न किसी रूप में विद्यमान न हों इस दृष्टि से विश्व के प्रत्येक व्यक्ति के लिए सद्गुरू वैद्य की आवश्यकता है किन्तु योग्य से योग्य वैद्य भी रोगी की सही चिकित्सा नहीं कर सकता है जब तक रोगी को उसके बचनों में विश्वास न हो। इसलिए 'सद्गुरू वैद्य' के साथ काग भुशुण्डि जी 'बचन विश्वास' पर भी बल देते हैं यह स्वयं उनकी अनुभूति भी है। अपनी आत्मकथा सुनाते हुए वे उस जन्म की कथा सुनाते हैं जब उज्जैन में जाकर उन्होंने सद्गुरू का वरण किया किन्तु जब उस उदार गुरू ने वातशल्य से प्रेरित होकर उनकी मानस विकृतियों का निराकरण करना चाहा तब वे उनके वचनों पर विश्वास के स्थान पर उनमें ही दोष करने लगे। काक भुशुण्डि जी कहते हैं—

गुरूनित मोहि प्रबोध, दुखित देखि आचरण मम्।
मोहि उपजाहि अति क्रोध, दम्भिहि नीतिकि भावई।।

इसका परिणाम यह हुआ कि वे **"दम्भ कपट मदमान नेहरू आ"** से पीड़ित में ही क्रोध का पित्त और भी प्रबल हो उठा फिर अहंकार के डमरूआ ने जोर मारा और वे गुरूदेव को स्वयं की तुलना में कमनिष्ठावान समझने लगे। जिसकी परिणति भगवान शंकर के शाप के रूप में हुई।। फिर भी "सद्गुरू वैद्य" की यह कृपालुता थी कि अपने शिष्य के स्वास्थ लाभ के लिए उन्होंने कुछ उठा नहीं रखा। इसमें उन्होंने स्वयं को असमर्थ मानकर त्रिभुवन गुरू भगवान शंकर से शिष्य की स्वस्थता की प्रार्थना की।

शंकर दीन दयालु अब यहि पर होहु कृपाल।
शाप अनुग्रह होय जेहि नाथ थोरेहि काल।।
एहिकर होय परम कल्याना। सोई करहु अब कृपानिधाना।।

इस प्रकार सद्गुरू पर विश्वास होते ही उनके कल्याण का पथ प्रशस्त हो गया अतः **"वचन विश्वास"** पर उनका आग्रह अपनी ही अनुभूति का परिणाम था फिर चिकित्सा के तीन और पक्षों की चर्चा की गयी और यह तीनों पक्ष इस प्रकार हैं पथ्य, औषधि और अनुपान। यदि रोगी औषधि के विषय में वैद्य को प्रमाण मान ले किन्तु भोजन में स्वेच्छाचार का परिचय दे तब भी उसके स्वस्थ होने की आशा नहीं की जा सकती है। क्योंकि स्वयं यह भूल भी भुशुण्डि द्वारा हो चुकी है। सद्गुरू वैद्य के द्वारा शिव मन्त्र जप के रूप में औषधि तो ग्रहण कर चुके थे, पर पथ्य के रूप में निरभिमानता के स्थान पर अभिमान को पथ्य करते रहे। स्वयं चरितमानस के खलनायक रावण की स्थिति भी इसी प्रकार की थी उसने भगवान शंकर के त्रिभुवन गुरू के रूप में अर्थात् संसार के सर्वश्रेष्ठ वैद्यराज को पा लिया था किन्तु शिवपूजन की औषधि के साथ-साथ विषय सेवन का कुपथ्य भी करता रहा, इसलिए वह जीवन में स्वस्थता के स्थान पर सन्निपात ग्रस्त होकर मृत्यु का ग्रास बन गया। वस्तुतः रोग तो कुपथ्य के कारण

ही उत्पन्न होते हैं। यदि साधक एक ओर साधना करता रहे और दूसरी ओर विषयाशक्ति में डूबा रहे तो उत्कृष्टा औषधि "साधन" से भी सच्चे लाभ की आशा नहीं की जा सकती है। औषधि के साथ-साथ अनुपान का विधान आयुर्वेद शास्त्र की अपनी विशेषता है। अनुपान के द्वारा दो कार्य सम्पन्न होते हैं। एक ही औषधि अनुपान भेद से अनेक रोगों में प्रयुक्त की जाती है। इसी तरह सद्गुरु वैद्य भी भक्ति दवा के साथ-साथ अनुपान का मिश्रण देते हैं। यद्यपि यहाँ पर श्रद्धा को अनुपान के रूप में बताया गया है, पर उसका आन्तरिक तात्पर्य सर्वथा भिन्न है। भक्ति साधना का स्वरूप अत्यन्त व्यापक है। सत्संग, कथा श्रवण, गुरु चरणों की सेवा, मन्त्र जप आदि उसके विविध रूप हैं। सद्गुरु साधक के कल्याण के लिए उसे भिन्न साधनाओं का निर्देश देता है। एक शिष्य को उसने मन्त्र जप का आदेश दिया और दूसरे को सेवा करने की आज्ञा प्रदान की, श्रद्धारहित शिष्य को इसमें भेद बुद्धि हो सकती है उसे यह भ्रम हो सकता है कि गुरुदेव का दूसरे शिष्य के प्रति पक्षपात है और वे मेरे प्रति निर्दय हैं। ऐसी स्थिति में श्रद्धा का अभाव औषधि की क्षमता को न्यून बना देगा। इसलिए यदि साधक मानसिक रोगों का निराकरण करना चाहता है तो गुरुदेव के वचनों पर विश्वास करते हुए श्रद्धा युक्त अन्तःकरण से भक्ति साधना में संलग्न हो जाना चाहिए। जीवन की विकृतियों को दूर करने का सर्वश्रेष्ठ ही उपाय यही है। मानस में कहा भी है—

रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनुपान श्रद्धा मति पूरी।।

इस प्रकार सद्गुरु ही ऐसा वैद्य बन जावे अथवा मिल जावे कि उसके वचनों में रोगी (साधक) को विश्वास हो और उस रोगी को यही संयम (परहेज) करना पड़े कि वह विषयों के फेर में न पड़े। राम की भक्ति ही संजीवनी जड़ी हो, श्रद्धा से पूर्ण बुद्धि ही अनुपान हो तो रोगी पूर्ण स्वस्थता का लाभ कर सकता है। ※※※

कुलीनता बाप दादों के देने से नहीं मिलती। जो चरित्रवान, सज्जन और नीतिवान है, वह चाहे जैसे कुलीन को भी वश में कर सकता है। नीचा खानदान या छोटा खानदान, ऊँचा खानदान या बड़ा खानदान ये सब बातें भूल जाइये। बादशाही भी धूल में लोट सकती है।

किमस्ति योगः

रचनाकार : **द्वारकाप्रसाद शर्मा** (लखनऊ)

'किमस्ति योगः' शीर्षक से आरब्ध स्वरचित श्लोकों तथा हिन्दी में उन श्लोकों के भावार्थ सहित यह आठवीं श्रृंखला है। प्रस्तुत अंक में महर्षि पतञ्जलि प्रणीत योग-दर्शन के अन्तर्गत समाधि-पाद के निम्नांकित तीन सूत्रों पर आधारित श्लोकों तथा उनके नीचे उनके अर्थ दिये जा रहे हैं। जिन तीन सूत्रों का समावेश इन श्लोकों में हुआ है, वे क्रमशः हैं :—

(1) विषयवती वा प्रवृत्ति रुत्पन्ना मनसः स्थिति निबन्धिनी।

(2) विशोका वा योतिष्मती।

(3) वीतराग विषयं वा चित्तम्।

अब प्रत्येक श्लोक के नीचे उसके अर्थ सहित व्याख्या, योग-जिज्ञासुओं के लिये प्रस्तुत की जा रही है।

(1) पुनः गुरूणां कृपये रितोऽहं, प्रवर्तये मात्र निमित्ततः खलु।
सूत्राणि त्रीण्येव प्रगृह्य चाग्रे, व्याख्यातु मेतानि सुखाय चेतसः।।

श्री सद्गुरूदेव की कृपा से प्रेरित होकर अब मैं एक निमित्तमात्र होते हुए पुनः लिखने में प्रवृत्त हो रहा हूँ। चित्त के सुख के लिये मात्र तीन सूत्रों को लेकर इनकी व्याख्या करूँगा।।

(2) अन्ये यथा मानस निग्रहाय, व्याख्यायिताः प्रागिह सुष्ठूपायाः।
सन्त्येव तेभ्योऽतिरिच्य तत्र, पञ्चेन्द्रियाणां विषयास्त थैव।।

मनो निग्रह के लिये जैसे इससे पूर्वगामी सूत्रों में उत्तम उपायों की व्याख्या हुई है, उनके अतिरिक्त अन्य उपाय भी हैं, और वे हैं पाँच इन्द्रियों के विषय।

(3) विषयास्तु शब्द स्पृग्रूप युक्ताः, रसेन गन्धेन युवास्तु पञ्च।
भवन्ति ते मानस स्थैर्य हेतवः, विशिष्ट स्थानेषु यदा सुसंदताः।।

इन्द्रियों के पाँच विषय हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस व ग्रन्थ। ये भी मन की

स्थिरता प्राप्त करने के कारण हुआ करते हैं, जब विशिष्ट स्थानों में इन पर संयम किया जाय।

(4) नासाग्रभागे कृत संयमाद्धि, साक्षात्कृतिर्दिव्यगन्धस्य भविता।
गन्धप्रवृत्ति भणिता यतो वै, मनः स्थितिं या विनिबद्धुनर्हा।।

नासिका के अग्रभाव में संयम करने से दिव्य गन्ध का साक्षात्कार अथवा अनुभूति हुआ करती है। इसे गन्ध प्रवृत्ति कहा जाता है। जो मन की स्थिति को बांधने में समर्थ हुआ करती है।

(5) जिह्वाग्रभागे च तथैव संयमात्, दिव्यो रसो यात्यनुभूतिपान्थे।
रस प्रवृत्तिमणिता तदानीम्, स्याच्चेतसो या खलु निग्रहाय।।

उसी प्रकार जिह्वा के अग्रभाग में संयम करने से दिव्य रस की अनुभूति हुआ करती है। इसी को रस प्रवृत्ति कहा जाता है। जो मनोनिग्रह का कारण हुआ करती है।

(6) तालौ यदा संयमनं भवेत्कंचित, प्रतिपत्ती रूपस्य भवेत्तदानीम्।
रूप प्रवृत्तिर्गदिता यदो हि, भवेत्तु तन्मानस निग्रहाय।।

तालु पर किये गये संयम से रूप की अनुभूति हो जाया करती है। इन्द्रियों के विषय के अन्तर्गत इसे ही रूप प्रवृत्ति के नाम से अभिहित किया जाता है जो मनोनिग्रह का कारणभूत तत्व हो जाता है।

(7) जिह्वामध्ये संयमः स्याद्यदा वै, स्पर्शस्य दिव्यस्य तदाऽनुभूतिः।
अतो हि सा स्पृग्विषया प्रवृत्तिः, निबान्धिनी या मनसस्तु संस्थितिम्।।

जब जिह्वा के मध्य में संयम किया जाता है तो दिव्य स्पर्श की अनुभूति हुआ करती है। इसे ही स्पर्श प्रवृत्ति के नाम से अभिहित किया गया है जो मानस की स्थिति के निबन्धन का कारण हुआ करती है।

(8) जिह्वामूले दार्ढ्यमापन्न योगी, शब्दं गृहन् संयमस्तद्विषयकम्।
सम्पद्यते शब्द विषयां प्रवृत्तिं, हेतुस्तु सा मानस निग्रहाय।।

जिह्वा के मूल में दृढ़ता प्राप्त कर लेने या संयम कर लेने पर शब्द विषयका

प्रवृत्ति हो जाया करती है। इसे ही शब्द विषया प्रवृत्ति के नाम से ख्यापित किया जाता है जो मानस निग्रह का कारण हो जाया करता है।

(9) एतान्समस्तान्व्यतिरिच्य काचन, क्रिया विशोकाभिधा समुक्ता।
यस्यां क्रियायां हृत्पद्मध्यानात्, स्थैर्यं तु मनसः क्रियते निरन्तम्।।

इन सब मनो निग्रह के कारणों के अतिरिक्त, एक और क्रिया है जिसे विशोका की संज्ञा से जाना जाता है। जिस क्रिया में हृत्पद्म में ध्यान करने से मन की स्थिरता प्राप्त हो जाया करती है।

(10) एषा क्रिया सत्वगुणं तनोति, रजस्तमस्कौ प्रणिहत्य शोकजौ।
निगृह्य गुणकौ च रजस्तमस्कौ, शोकापनोदन करीति क्रिया विशोका।

यह क्रिया सत्वगुण का विस्तार करती है। और रजस् और तमस् से उत्पन्न शोकादि का संक्षय करती है। क्योंकि यह शोक का निवारण करने वाली क्रिया है और रजस् और तमस् को समाप्त करती है। इसीलिये, इसे विशोक की संज्ञा दी गई है।

(11) अस्यां क्रियायान्तु मनो निग्रहं चेत्, हृदिस्थ पद्मे कुर्यान्तु योगी।
सूक्ष्मा हि ग्रन्थिर्हृदि पद्म सन्निभा, विराजते ध्यातुमभीष्ट प्राप्तये।।

इस क्रिया के अन्तर्गत भी मनो निग्रह हुआ करता है। यदि योगी हृत्पद्म पर ध्यान केन्द्रित किया करता है। मनो निग्रह रूप अभीष्ट की प्राप्ति के लिये एक सूक्ष्म ग्रन्थि हृदय में पद्म के सदृश विराजमान है।

(12) अष्ठदलात्मकं पद्मं, मूलमूर्ध्वमधोमुखम् ।
सम्पृक्तानि दलान्दस्य, प्राणादामानुशील नैः।।
विकचान्यूर्ध्ववक्त्राणि, उन्नीयन्ते तु योगिभिः ।

आठ पंखुड़ियों का पद्म हृदय में विराजमान है, जिसका मूलभाग तो ऊपर है और मुख नीचे की ओर है। इसके दल प्राणायाम की क्रिया से विकसित हो जाया करते है। विकसित होने पर ऊर्ध्वमुखी योगियों द्वारा किया जाता है।

(13) कमलमध्यभागे स्थितिरोम पदस्य, अकारं-उकारं तथा माक्षरञ्च।
क्रमात् सूर्यस्तु शाशाङ्कवह्नी, रूपायितास्ते त्रयः पद्मसंस्थिताः।।

इस कमल के मध्यभाग में ओङ्कार अक्षर की स्थिति है। इस ओङ्कार पद के अ, उ व म क्रमशः सूर्य, चन्द्र और अग्नि के द्योतक हैं और पद्म पर उनकी सं स्थिति बनी रहती है।

(14) अर्द्धमात्रा च या तस्मिन्, सा ब्रह्मानन्दरूपिणी।
सुषुम्ना राजते नाडी, कलिकोपरि सम्मुखा।।

इस ओङ्कार पद पर जो अर्द्ध मात्रा है, वही, ब्रह्मानन्द स्वरूपिणी है। सुषुम्ना–नाड़ी वहाँ पर विराजमान है और कलिकाओं के ऊपर मुख किये हुए रहती है।

(15) तस्यान्तर्हिता नाड़ी, ब्रह्मनाडीति संज्ञिता।
प्रविष्टा या च मूर्ध्नर्येव, सम्पृक्ता रविमण्डलैः।।

उसके अन्तर्हित जो नाड़ी है वही ब्रह्मनाड़ी है। जो मुर्धा पर स्थित है और जिसका सम्पर्क सूर्य–मण्डलादि लोकों से रहा करता है।

(16) प्राणायामात्तु ध्यानाद्वा, हृदयं शोध्यते यदा।
चेतस्तु यद् वर्तमानं, तदेवाभासते तदा।।

प्राणायाम या ध्यान द्वारा जब हृदय का परिशोधन किया जाता है और चित्त जो वहाँ पर स्थित है वह प्रतिभासित हो जाया करता है।

(17) तदेव चित्तं प्रतिभाति सूर्यवत, चन्दस्य रूपे मणिरूप एव वा।
ज्योतींषि रूपाणि च तानि भान्ति, ज्योतिष्मती सार्थवती तदा स्यात्।।

वही चित्त सूर्य, चन्द्र या मणि रूप में ज्योतिवत अपने रूप को ग्रहण करता है। इसीलिये इस विशोका वृत्ति का नाम ज्योतिष्मती सार्थक हुआ करता है।

(18) रजस्वमोभ्यां जनितैः, शोकमोहादि कल्मषौ।
विशोकायां प्रवृद्धायां, क्षीयन्ते सद्य एव हि।।
एतस्मादेव सा वृत्तिर्विशोका शोकनाशिनी।।

रजस् और तमस् से उत्पन्न शोक और मोहादि जो कलुषों व विशोक प्रवृत्ति की प्रतिपत्ति होने पर तत्काल क्षीण हो जाया करते हैं। इसीलिये यह शोकनाशिनी वृत्ति विशोका नाम्नी वृत्ति के नाम से ख्यापित होती है।

(19) चित्तं भवेच्चतु स्थिरं कदाचित, रागाद्विहीनेषु वरेषु योगिषु।
स्थैर्यं मनः समभिपद्यत एवे तर्हि, एषोऽस्त्युपायोऽन्यतरोऽस्ति सूत्रे।।

अब 'वीतराग विषयं वा चित्तम', सूत्र में वर्णित चित्त की स्थिरता प्राप्त करने के उपाय भगवान पतञ्जलि उद्घोषित करते हैं। यदि हमारा चित्त किन्हीं राग से रहित श्रेष्ठ योगियों पर स्थिर हो जाया करता है तो भी मन स्थिरता प्राप्त कर लिया करता है। यह एक अन्य उपाय इस सूत्र द्वारा प्रतिपादित किया गया है।

(20) मनः स्वयं यन्मनुते भवेत्तत्, शुभे चिन्तने सौमनस्यात् शुभं स्यात्।
शिवं शुभं चिन्तनं स्याच्चिरन्तनं, कथं मनो नो शिव संकल्पमन्न ?

हमारा मन जैसा मान लेता है वैसा ही वह हो जाता है। शुभ चिन्तन युक्त सौमनस्य से शुभ ही शुभ को मन धारण किया करता है। और शुभ फल की प्राप्ति हो जाया करती है। यदि हमारा मन निरन्तर शुभ और शिवसंकल्पवान हो जाय तो वह क्यों नहीं शिवसंकल्पवान् होगा।

(21) श्रीणि सूत्राणि संगृह्य, ख्यापितानि यथाक्रमम्।
श्री गुरुणां प्रभावोऽयं, नास्ति मेऽत्राल्पीयसी मतिः।।

उपरिलिखित श्लोकों द्वारा तीन सूत्रों को लेकर उनको क्रमशः छन्दोबद्ध किया गया है। यह श्री सद्गुरुदेव तथा परमाराध्य श्री प्रभु जी का ही प्रभाव है। मेरी स्वल्पमति है वह इन गूढ़ तत्वों को कहाँ समझ सकती है।

वैष्णवी विद्या या अजपागायत्री

"प्राण-विद्या"

पं० राजेन्द्र प्रसाद पाठक

"जब मैं था तब गुरु नहीं, जब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, तामें दो न समाय।"

अतः शास्त्र सम्मत् एवं विधि-निषेध आज्ञानुसार, इस परम रहस्यमय 'ब्रह्मविद्या' की गोपनीयता प्रकाशित करना मार्मिक बात नहीं है, किन्तु सद्गुरुदेव की आज्ञा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एवं विधि-निषेध से भी अग्रगण्य, सर्वोत्कृष्ट सर्वोपरि है, अतः श्री प्रभुजी के कमलवत् चरणों में **'पत्रं पुष्पं फलं तोयं'** यथावत् रूप में उन्हें ही सादर समर्पित करते हुये वर्णित है कि–

'प्राण विद्या' जिसे **'अजपा-गायत्री'** कहा गया है, जीव के लिये मोक्षदायिनी विद्या बतायी गयी है। मूर्ख से मूर्ख बालक भी इस विद्या को प्राप्त कर, वाणी (सरस्वती) शक्ति प्राप्त कर लेते हैं, समस्त योगावलम्बी इसे **'हंस-विद्या'** तथा **'आत्म-मन्त्र'** की संज्ञा देते हुये मोक्ष का हेतु बताते हैं। 'हंस' शब्द ही परमात्मांश आत्मा का वाचक है। उपनिषद, योग शिखोपनिषद, ब्रह्मविद्योपनिषद एवं हंसोपनिषद के साथ-साथ, योग-चूड़ामणि तथा ध्यानबिन्दूपनिषद में इस विद्या की उपयोगिता 'जीव' के लिये परमावश्यक बतायी गयी है। ध्यानबिन्दु-उपनिषद बताता है कि इस मन्त्र जप के तुल्य– कोई विद्या, कोई जप तथा कोई पुण्य भी नहीं है, यथा–

'अनयासदृशी विद्या, अनया सदृशो जपः।
अनया सदृशं पुण्यं नभूतं न भविष्यति।।

योग शिखोपनिषद, इस विद्या को हंस-मन्त्र, योग का श्रोत, भोग एवं मोक्ष के साथ-साथ सभी सिद्धियों का अनादि मूल कहते हुये मन्त्रों का राजा बताया है। इस हंस-मन्त्र में सभी योगों (जैसे मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग एवं राजयोग) के युक्ति में ही अन्तर्मन की भूमिका निहित है अतः इस मन्त्र की सिद्धि ही जीवन में महायोग की प्राप्ति करवाती है जिसे परम करुणानिधान श्री सद्गुरुदेव की सहज कृपा से सिद्धयोग साधना युक्त साधक को प्राप्त हो जाता है। मानव शरीर में रीढ़ की हड्डी (मेरुदण्ड) के अन्दर जो सूक्ष्म शक्ति का केन्द्र है यह ही मूलाधार, स्वधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञा-चक्र अथवा कमल के नाम से जाना जाता है जिसमें क्रमशः श्री गणेश (पृथ्वीतत्व), जल तत्व, विष्णु लक्ष्मी सहित (अग्नि तत्व) अन देश्वर भगवान सदा शिव-पार्वती (वायु तत्व), जीवात्मा का स्थान (आकाश-तत्व),

श्री गुरुदेव (ज्ञान शक्ति) —सर्वोत्कृष्ट रूप से क्रमशः गुदाद्वार, लिंगनाल के मूल, नाभिमण्डल, हृदयदेश, कण्ठदेश, दोनों भौहों के मध्य (बीजाक्षर हं, क्षं ॐ) चिदात्मक (चिति-शक्ति) रूप में परमेश्वर महायोगेश्वर परम करुणावि श्री प्रभु विराजमान रहते हैं, जिसका वर्णन ध्यानबिन्दु-उपनिषद तथा त्रिशिखि ब्राह्मण उपनिषद में किया गया है कि कुण्डलिनी जागरण भी इसी मन्त्र के श्वांस, निश्वास पर निर्भर करती है—

"प्राणिनां देहमध्ये तु स्थितो हंसः सदाऽच्युतः।
हंस एव परं सत्यं हंस एव तु शक्तिकम्।।

(ब्रह्मविद्योपनिषद्)

प्रायः क्रियायें संस्कार पर ही निर्भर करती हैं। योगेश्वर आनन्दकन्द श्री प्रभुजी अपनी अमृतमयी देवत्व वाणी में संस्कारों का विशिष्ट स्थान देते हुये, सर्वोत्कृष्ट रूप से सर्वदा हम आप में निहित शक्ति प्रदान करते हैं। कुसंस्कारों के संक्षिप्त भोग एवं सुसंस्कारों के पनपने हेतु सभी जीवधारियों का आश्रय लेकर यह प्राण-हंस, प्राण एवं अपान ग्रन्थि, जिसे अजपा गायत्री कहते हैं मोक्ष का हेतु है। इसे ब्रह्म-विद्या के नाम से भी जाना जाता है, अतः संस्कारों का हमारे दैनिक जीवन में ही नहीं बल्कि समाज एवं सामाजिक तत्वों से भी विशिष्ट सम्बन्ध है। प्रायः ऐसा भी पाया जाता है कि कुसंस्कारी जीव छोटी-छोटी भूलों को वृहद रूप दे देता है। जबकि संस्कारजन्य सुसंस्कारी जीव बड़ी-बड़ी भूलों का कोई महत्व न देते हुये, गीता के 'आत्मैव आत्मनो बन्धुः' का स्वरूप खड़ा करते हुये 'अधिष्ठान्नं तथा कर्ता' का आश्रय मृदुहास में ही ले लेता है। इसका मात्र कारण है कि— जीव प्राण एवं अपान वायु के वशीभूत होकर सदैव चंचल रहता है। प्राणापान ही जीव को ऊपर (सुसंस्कारों), नीचे (कुसंसकारों) में दौड़ाता रहता है, और इसकी चंचलता तो ऐसी होती है जैसे हाथ से फेंकी (पटकी) गयी ऊपर नीचे की ओर जाती हुई गतिमान गेंद। इस ऊपर नीचे जाने के रहस्य को यह अजपा-गायत्री स्वाभाविक वृत्ति में लाकर हंस हंस उच्चारण अहर्निश करवाती है तथा निरन्तर तत्परता से यदि साधक अभ्यास बढ़ाता चला जाय तो कुछ ही समय में लयता, उन्मनी-अवस्था, घटावस्था तथा दिव्य-दृष्टि एवं विद्या-विहित शास्त्रों के गूढ़ रहस्यों को समझने की शीघ्र प्रतिभा पाकर वासना का क्षय एवं चित्त और प्राण की स्थिरता से समाधि की ओर उन्मुख करवा देती है। इस प्राण विद्या को जान लेने वाला ही योगवेत्ता कहा जाता है। योग चूड़ामणि संकेत करता है कि —

"आक्षिप्तो भुजदण्डेन यथोच्वलित कन्दुकः।
प्राणापान समाक्षिप्तस्तथा जीवो न निष्ठति।।

अपानः कर्षति प्राणं प्राणोऽपाना च कर्षति।
उर्ध्वाधः संस्थितावेतो यो जानाति सयोगवित।।
हंसः हंसः वेद्धवाक्यं, प्राणिनां देहमाश्रितः।
स प्राणापान योग्रन्थिर जपेत्यभिधियते।।

स्वाभाविक रूप से जीवात्मा, आत्मवाचक हंसमन्त्र का, दिनरात में 21600 बार श्वांस लेते हुये जप करता रहता है। नाभि मण्डल में जो मणिपूरक चक्र है उसी स्थान पर बारह (पुट-युक्त) अरों वाला महाचक्र है, जिसमें पुण्य-पाप से प्रेरित हुआ जीव, अपने ही कर्मों के कारण तब तक घूमता रहता है जब तक कि उसे इस (तत्व-ज्ञान) अजपा-गायत्री (हंस-मन्त्र) का कल्याण कारक ज्ञान सद्गुरु उपदिष्ट रूप से नहीं हो जाता। सद्गुरु वही हो सकता है जो पूर्णतया को प्राप्त हो अर्थात् सद्गुरु, बिना दृश्य के ही जिसकी दृष्टि अन्तर्लक्ष्य में स्थिर है। प्राण-वायु मनोलय के कारण सहज रूप से बिन्दु में स्थिर है, चित्त निरालम्ब स्थिर है, वहाँ सद्गुरु कल्याणकारक शक्तिपात कर संकल्पमात्र से ही, असम्भव भी सम्भव बना देता है तथा उनकी कृपा से कुण्डलिनी भी कल्लोल करती हुई नृत्य करने लगती है। **"दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्यात्। प्राण स्थिरो यस्य विनावरोधात्।। चित्तं स्थिरं यस्य विनावलम्बात्। स एव योगी स गुरुः स सेव्यः।।"** इस प्रकार के गुरु से शक्तिपातित शिष्य या शिष्या की जीवात्मा प्रत्येक श्वांस में तथा निश्वांस में जब इस प्राण-मन्त्र का ज्ञान हो जाता है। तो वह मानसिक रूप से जप करता हुआ, श्वांस छोड़ते समय हं (शिव–वाचक) तथा श्वांस लेते समय सः (शक्ति) ध्वनि करता है। अतः हंसः हंसः ध्वनि बारम्बर करते समय जीव अर्धनारीश्वरी आशुतोष भगवान शिव और परमेश्वर शक्ति स्वरूपा (दुर्गा) का जप करता हुआ; शिव-शक्ति अर्थात् परमात्मा और जीवात्मा में एकता स्थापित कर असम्प्रज्ञात समाधि में स्थिर हो मोक्ष का अधिकारी बनता है किन्तु कृतार्थ हेतु सद्गुरु उपदेश के बाद ही हंसः हंसः श्वांस की यह प्रक्रिया, जो अब तक केवल इड़ा पिंडला नाड़ियों से हो रही थी वह अब गुरु कृपा से सुषुम्ना द्वार खुल जाने से, प्राणों का संचार हो– 'सोऽहं सोऽहं' जपता हुआ कैवल्य पद प्राप्त करता है। पृथ्वी जल आदि से लेकर शिव पर्यन्त छत्तीस तत्व और **'अ'** से लेकर **'क्ष'** तक वर्ण 'हंस' ही है। **'ध्यानबिन्दु उपनिषद्'** तथा योग चूड़ामणि उपनिषद इस विद्या को वैष्णवी विद्या कहते हुये संकेत करता है कि–

"सर्व देवस्य मध्यस्थो हंस एव महेश्वरः।
पृथ्वी आदि शिवान्तं तु अकाराद्याश्च वर्णकाः।।
दृकरेण वहियांति सकारेण विशेत्पुनः।
हंस हंसेति मन्त्रोऽयं सर्वः जीवैश्य जप्यते।।

गुरु वाक्यात् सुषुम्नाम्यां विपरीतो भवेज्जपः।
सोऽहं सोऽहं मिति प्रोक्तो मन्त्रयोगः स उच्यते।।
तन्नाभिमण्डलम् चक्रम् प्रोच्यते मणि पूरकम्।
द्वादशारे महाचक्रे पुण्यपाप नियन्त्रितः।।
तावज्जीवो भ्रमेत्येव यावत्तत्वं न विन्दति।
उर्ध्वाधः संस्थितो वेत्ता यो जानति स योगवित्।।

अतः सर्व शक्ति सम्पन्ना अधिष्ठात्री, आद्य-शिवशक्ति स्वरूपा जगज्जननी माँ दुर्गा के प्रति श्री देवी भागवत में **"त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या; विश्वस्यविजं परमासिमाया। सम्मोहितं देवि समस्तमेतत् त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्ति हेतुः"** कहते हुये **"इड़ा पिङांला च सुषुम्ना तु नाड़ी"** कहकर वर्णन किया गया कि— हे देवि तुम मुझे रूप (आत्मस्वरूप का ज्ञान) दो, जय (मोह पर विजय) दो, यश (आत्मज्ञान रूपी यश) दो और शत्रुओं (काम-क्रोधादि) का नाश करो। यथा—

"रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि।"

श्री दुर्गा सप्तसती के देवी-कवच (हंसः) शिव-पार्वती शक्ति वर्णन में ऐसी भी बात आती है कि—"जो देवताओं को भी परम दुर्लभ स्थान है वह स्थान देहान्त (मृत्यु) के बाद (जीव) उस परमोत्तम धाम को भी श्री भगवती (हंसः) महामाया की विशेष अनुकम्पा से प्राप्त होता है और फिर दिव्य स्वरूप को प्राप्त होकर शिव (हं) जी के साथ (सः) परमानन्द को प्राप्त होता है।"

"देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम्।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामाया प्रसादतः।।
लभते परमं रूपं शिवेन सह मोदते।।

इस विद्या की गोपनीयता के रहस्य तथा उपयोगिता का सम्यक विवेचन, सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनतकुमार जी अपने ब्रह्मचर्य अवस्था के मार्मिक सन्दर्भ के द्वारा 'हंसोपनिषद' में महर्षि गौतम से बताया कि इस (प्राण या) हंस मन्त्र की उपयोगिता किसी भी अज्ञात या अनाधिकृत व्यक्ति (जीव) को न, ही बताना चाहिये और न, ही प्रकट करना चाहिये। यह मन्त्र अति गुह्य एवं श्रेष्ठ रहस्य को निर्दिष्ट करता है तथा ईश्वरत्व प्राप्ति को अमोघ शक्ति प्रदान करता है परन्तु इसमें अनन्य गुरु भक्ति एवं गुरुनिष्ठता की आवश्यकता ही विशिष्ट एवं अभिष्ट फल देती है। **'ब्रह्मविद्योपनिषद'** संकेत करता है कि गुरुनिष्ठ बालक या बालिका, ब्रह्मचर्य या साधक इस हंस रूपी विद्या का पान कर, गुरु को ईश्वर से भी बढ़कर समझे तथा उनके

द्वारा दिये गये शुभ या अशुभ आज्ञाओं पर किसी प्रकार का (संशय) विचार करने पर ही अभिष्ट फल को प्राप्त कर, आत्मा का साक्षात्कार करके मोक्ष का अधिकारी तथा निश्चल ब्रह्म की प्राप्ति कर सकता है। यथा–

"अनाख्येयमिदं गुह्यं योगिनां कोश सन्निभम्।
हंसस्याकृति विस्तारं भुक्ति मुक्ति फलप्रदम्।।
शुभं वा अशुभं मन्यद्वा पदुक्तं गुरुणा भुवि।
तत् कुर्यादविचारेण शिष्य संतोष संयुतः।।
हंस एव परो रुद्रो हंस एव परात्परम्।
सर्वदेवस्य मध्यास्थो हंस एव महेश्वरः।।
हंस विद्यामिमां लब्ध्वा गुरु श्रुषया नरः।
आत्मनमात्मना साक्षाद् ब्रह्म बुद्धवा सुनिश्चितम्।
गुरु भक्ताय देवाय नित्य भक्ति पराय च।
प्रदातव्यमिदं शास्त्रं नेतरेभ्यः प्रदापयेत।।
यस्य देवस्य परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताः ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।
अजपा नाम गायत्री योगिनां मोक्षदा सदा।
अस्याः संकल्प मात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते।।

सत्य एक विशाल वृक्ष है। ज्यों–ज्यों उसकी सेवा की जाती है, त्यों–त्यों उसमें से अनेक फल पैदा होते दिखाई देते हैं। उनका अन्त ही नहीं होता। हम जैसे–जैसे सत्य की गहराई में उतरते हैं वैसे–वैसे उसमें से अधिक रत्न मिलते जाते हैं तथा सेवा के अवसर प्राप्त होते रहते हैं।

मेरे श्री गुरुदेव एक सिद्ध फकीर की दृष्टि में

(केशव देव उपाध्याय)

बीत सन् 1981 की है। श्री सद्गुरुदेव भगवान के विशेष कृपापात्र शिष्य आदरणीय श्री सुरेश चन्द शर्मा जी, जो उन दिनों बी.आई.सी. (ब्रिटिश इन्डिया कारपोरेशन) के मैनेजिंग डाइरेक्टर थे एवं उत्तर प्रदेश तथा बिहार राज्य की अनेकों चीनी मिलों के सर्वेसर्वा थे; के विशेष अनुरोध एवं बाराचकियों के मैनेजर चीनी मिल की प्रार्थना को स्वीकार कर; श्री प्रभु जी ने यहाँ का योग प्रचार कार्यक्रम किया था। कार्यक्रम सात दिनों का था। यह स्थान बिहार प्रान्त के चम्पारण जिले के उत्तरी छोर पर स्थित है। परम योगिनी आदरणीय श्री रामरती जी की साधना स्थली जोगबनी मात्र यहाँ से तेरह किलोमीटर दूर है। श्री प्रभु जी ने इस पवित्र आश्रम को भी देखने की इच्छा प्रकट की थी। परन्तु परिस्थिति कुछ ऐसी बनी की जाने का संयोग नहीं बन पाया। श्री प्रभु जी का यहाँ का कार्यक्रम बड़ा ही आनन्ददायक, शिक्षाप्रद एवं यौगिक चमत्कारों से परिपूर्ण था। आराध्यदेव के पार्षदगणों के साथ ही बाहर से आने वाले गुरु भाई-बहनों एवं योग-जिज्ञासुओं के ठहरने एवं खान-पान की व्यवस्था चीनी मिल के कम्पस के पास ही की गयी थी, जहाँ कार्यक्रम हेतु मण्डप बनाया गया था। कार्यक्रम कुछ इस प्रकार निर्धारित था कि प्रातः ६ बजे से साढ़े आठ बजे तक भजन-कीर्तन-आरती का कार्यक्रम, उसके पश्चात आराध्य देव श्री द्वारा दो अध्याय श्री गीता का पाठ किया जाना, एवं उदाहरण देकर उसका अर्थ समझाने का कार्य होता था। इसके पश्चात् साध्य एवं असाध्य रोगों की निःशुल्क योग क्रियाओं द्वारा रोग निवारण एवं फिर शंका समाधान का कार्यक्रम श्री प्रभु जी द्वारा किया जाता था। अपराह्न एक बजे से तीन बजे तक भोजन एवं विश्राम का समय था। तीन बजे से अपराह्न साढ़े पाँच बजे तक महिला सत्संग का कार्य होता था जिसमें आदरणीय बहन सुश्री उमा शर्मा द्वारा अनादि सिद्ध श्री महाप्रभु जी द्वारा उद्धरित पुरुष-महिला प्राणियों की गाथा भजनावली के रूप में प्रस्तुत की जाती थी। उनकी समाप्ति के बाद श्री प्रभुजी अपने मुखारविन्दु से उसकी विस्तृत विवेचना किया करते थे। उसके पश्चात् थोड़े अन्तराल का समय होता था एवं सायं सात बजे से नौ बजे तक भजन-कीर्तन-आरती एवं श्री प्रभु जी के यौगिक प्रवचन का समय था। दूसरे दिन प्रातः सबेरे से हुई पिछले दिन के कार्य-कलापों की पुनरावृति होती थी। इस कार्यक्रम में आठ सौ से एक हजार के लगभग योग जिज्ञासुओं की संख्या एकत्र हो जाती थी।

ईर्ष्यालु लोग हर युग में हर जगह हैं एवं रहेंगे। श्री प्रभुजी का यह कार्यक्रम भी उनसे अछूता नहीं रहा। श्री प्रभु जी के अनुआइयों से द्वेष रखने वाले प्राणियों को यह कार्यक्रम बिल्कुल ही अच्छा नहीं लग रहा था। उस इलाके में एक सिद्ध फकीर निवास करता था एवं उसके शिष्यों की संख्या सैकड़ों में थी। वह प्राणियों के लौकिक कार्य अपने आशीर्वाद से सफल कर दिया करता था। वह लोगों के भूतकाल की बातें अक्षरशः सत्य बता दिया करता था एवं विभिन्न कार्यों के लिये भविष्यवाणी भी किया करता था। वे लोग जो श्री प्रभुजी के चरण कमलों से अकारण द्वेष कर रहे थे, उससे प्रार्थना की कि महाराज, योग का प्रवचनकर्ता एक साधु आया है जो देखने में सेठ की तरह लगता है, लम्बी-लम्बी कपोल कल्पित बातें करता है एवं कहता है कि योगी ईश्वर से बड़ा है एवं वह सर्वसमर्थ

होता है। उसकी मनगढ़न्त बड़ी-बड़ी बातें सुनकर हम लोग परेशान हो गये हैं। और तो और उसके अनुयायी एवं शिष्य उसे भगवान कृष्ण, भगवान शिव एवं भगवान विष्णु कहते हैं एवं वैसा ही मान प्रतिष्ठा से सम्बोधित करते हैं। अब आप चलकर उसको शास्त्रार्थ के लिये ललकारिये एवं परास्त कर उसका मान-मर्दन कीजिये। आप इतने बड़े शक्ति सम्पन्न सिद्ध फकीर हैं, आप को कोई खुदा कहता है तो आप नाराज होकर कहते हैं कि किसी मानव शरीरधारी की खुदा से तुलना नहीं की जा सकती एवं उसका अत्याचार देखिये कि उसके शिष्य उसे ईश्वर की उपाधियों से सम्बोधित करते हैं एवं वह मुस्कराता रहता है। आप हम सभी की प्रार्थना स्वीकार कर शास्त्रार्थ हेतु चलने कि कृपा करें एवं उसे उसके धरातल पर लाकर यह दिखा दीजिये कि सिद्ध फकीर की क्या हस्ती है। उसके बाद उसे स्वतः ज्ञात हो जायेगा कि यदि एक सिद्ध फकीर इतनी ताकत रखता है तो ईश्वर की क्या सामर्थ्य है। अपने शिष्यों के अनेक प्रकार से की गयी अनुनय-विनय एवं प्रार्थना से प्रसन्न होकर, आखिर वह फकीर मुकाबले के लिये तैयार हो ही गया।

कार्यक्रम का अन्तिम दिन था। अपराह्न सवा तीन बजे का समय था। श्री सद्गुरुदेव जी महाराज प्रवचन हेतु बने पण्डाल में अनादि सिद्ध योगेश्वर श्री महाप्रभु रामलाल जी महाराज के विशाल स्वरूप के बगल में बिठाये गये अपने आसन पर अर्ध पद्मासन में विराजमान थे। परम आदरणीया सुश्री उमा बहन जी, श्री महाप्रभु जी की कृपा कथाओं को भजनावली के रूप में गा रही थीं। पूरा पण्डाल योग जिज्ञासुओं एवं साधक नर-नारियों से खचाखच भरा हुआ था। यह महिला सत्संग का कार्यक्रम प्रारम्भ होने के करीब दस मिनट बाद एक अधेड़ उम्र का फकीर भेषधारी आदमी आकर पण्डाल के पिछले हिस्से में दोनों हाथ से अपनी छड़ी को जमीन पर आगे की तरफ टेके खड़ा होता है एवं उसके पीछे करीब साठ आदमी आये। तो उसकी आँख का इशारा पाकर जमीन पर बैठ गये। भजनावली का कार्यक्रम साढ़े पाँच बजे समाप्त होता है एवं श्री प्रभु जी अपने मुखारबिन्दु से आनन्दकन्द परम करूणा निकेतन श्री महाप्रभु जी द्वारा कही गयी उपरोक्त कथा तथा अन्य घटनाओं का सविस्तार वर्णन समझाते हैं। सायंकाल करीब पौने सात बजे का समय है। वह फकीर जो करीब साढ़े तीन घन्टे तक श्री प्रभु जी के दर्शन कर भजन एवं उनका प्रवचन सुन रहा था, जमीन पर सिर रखकर नमाज की विधि से प्रणाम किया एवं फिर पीछे मुड़कर कहा कि चलो हमारे साथ। उसका आदेश सुनकर उसके सभी शिष्य मण्डलीगण उसके साथ हो लिये। मात्र कुछ ही दूर चलकर वह रुक गया एवं उसके सभी शिष्य गोलाई बनाकर उसको बीच में लेकर पूछने लगे कि सिद्ध बाबाजी! क्या बात है, आपने शास्त्रार्थ उससे क्यों नहीं किया।

सिद्ध फकीर ने गहरी श्वांस ली एवं फिर आँखें तरेरते हुए कहा। अरे हरामजादों, तुम्हें साधारण सा दिखने वाला यह विशेष मानव यदि खुदा नहीं तो खुदा से रंच मात्र भी कम नहीं है। यदि हमने तुम्हारी बातों पर अन्धविश्वास कर लिया होता एवं जाकर सीधे शास्त्रार्थ शुरू कर दिया होता तो मैं बर्बाद हो जाता, कहीं का, किसी काम का नहीं रहता। मैंने तो पहले रूहानी आँखों से देखने के बाद शास्त्रार्थ का विचार किया। खुदा का शुक्र है कि उसने हमें ऐसी सद्बुद्धि प्रदान की। अब जा कर तुम सब लोग अपने गलत मनोभावों के लिये उनसे क्षमा याचना करो एवं प्रणाम करो। मैंने अपनी गल्ती के लिये क्षमा करने की प्रार्थना की एवं उन्होंने हमें तत्काल क्षमा कर दिया। सिद्ध फकीर के शिष्यों को फकीर की बातों का कितना असर पड़ा ये तो वे करूणानिधान ही जानें परन्तु हम लोगों को यह पूर्णरूपेण समझ लेना चाहिये कि धोती-कुर्ता के साधारण भेष में छिपे साधारण सोच से दिखने वाले हमारे श्री गुरुदेव सर्वसमर्थ पूर्ण सिद्ध योगेश्वर ही हैं। ※※※

श्री गुरुदेवजी की कृपापात्रा-श्रीमती सुशीला देवी

"प्रथम पूजन गुरुदेवजी का या श्री गणेश जी का"

राजेश कुमार श्रीवास्तव (राजू)

भक्तवत्सल परम् सद्गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने सर्वशक्तिमान नित्य शुद्ध पूर्ण ब्रह्म दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज हेतु, माताजी को प्रति सोमवार अपने सरकारी आवास पर ही कीर्तन कराने की आज्ञा एक रोज अचानक ही प्रदोन कर दी। अतः माताजी के पति श्री सिसोदिया साहब जी को नौकरी के माध्यम से जिन जेलों पर पहुँचने का अवसर प्राप्त हुआ, वहाँ उन्होंने अपने आवास पर ही जेल कर्मचारियों के सहयोग से प्रति सोमवार को श्री महाप्रभुजी का कीर्तन बड़ी धूमधाम से करवाया। कभी-कभी आवश्यकतानुसार कुछ बाहर के भजन-मण्डल भी कीर्तन करने के लिए बुलाये जाते थे। कीर्तन आरम्भ होने से पहले बाबूजी पूजन सपरिवार श्री दादा गुरुदेवजी एवं श्री गुरुदेवजी का पूजन करते थे तत्पश्चात् विघ्नविनाशक गौरीनन्दन श्री गणेशजी का। इस बात को लेकर एक मण्डल के व्यक्ति ने, जो कि मण्डल का प्रधान गायक था, अपनी स्पष्ट आपत्ति व्यक्त की। अपनी वाणी में कठोरता और अनावश्यक बल लाते हुए उसने बड़ी उग्रता से कहा, "हमने दुनियाँ में ऐसा कहीं नहीं देखा कि श्री गणेश भगवान को अन्य देवी–देवताओं के बाद पूजा जाता हो, श्री गणपति भगवान तो तीनों लोकों में सर्वप्रथम पूज्यनीय हैं।" अपनी परम्पराओं के सिद्धांतों पर सदैव अटल रहने वाले श्री सिसोदियाजी पर उक्त व्यक्ति की आलोचनात्मक प्रतिक्रिया का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उन्होंने बड़ी शान्तिपूर्वक उस भजन-गायक को उत्तर दिया, "आप अपने स्थान पर बिल्कुल ठीक हैं किन्तु हम अपनी प्रबल आस्थानुसार सर्वप्रथम अपने गुरुदेव भगवान का ही पूजन किया करते हैं। तत्पश्चात श्री गणेशजी का, क्योंकि हम ऐसा समझते हैं कि सद्गुरु सत्ता से सर्वोपरि कुछ भी नहीं।" बाबूजी के अप्रभावित उत्तर को पाकर वह अशान्तमन व्यक्ति एक कोने में शान्त होकर बैठ गया।

आरती पूजन की तैयारियाँ की जाने लगीं। जब श्री महाप्रभुजी की दिव्य आरती शुरू हुई, वह व्यक्ति भी उखड़ा हुआ सा हाथ जोड़कर सबके साथ खड़ा हो गया। आरती का शक्तिपातमय प्रभाव उस व्यक्ति पर पड़ने लगा आरती के मध्य में ही वह ध्यानस्थ होकर भूमि पर गिर पड़ा। आरती के उपरान्त अपनी सामान्य स्थिति में आने पर वह व्यक्ति लज्जित होकर श्री सिसोदियाजी के सम्मुख हाथ जोड़ता हुआ कहने लगा, "बाबूजी आपसे मैंने तर्क–वितर्क करके अक्षम्य अपराध किया है मैं अपने अशिष्टता पूर्ण व्यवहार के प्रति शर्मिन्दा हूँ। धन्यभाग्य हैं। मेरे जो गुरुदेव भगवान ने मुझ यथार्थ से अवगत करा दिया है। सचमुच,

जहाँ स्वयं गौरीनन्दन श्री गणेश जी महाराज सदाशिव भगवान का पूजन करना एकदम असंगत सा प्रतीत होता है। मैंने अपनी क्षणिक ध्यानावस्था में यह देख लिया है कि श्री महाप्रभुजी ही सदाशिव भगवान के प्रत्यक्ष स्वरूप हैं। और ज्ञान, यश तथा ऐश्वर्य के दाता श्री गणेश भगवान स्वयं उनका पूजन कर रहे हैं। आप सर्वप्रथम अपने गुरुदेव का ही पूजन किया करें।

–: श्री सिसोदिया साहब जी के प्राणों की रक्षा :

बाबूजी (श्री डी.एस. सिसोदियाजी) की वर्तमान अवस्था लगभग सत्तर–पिचत्तर वर्ष के आस पास होगी। नौकरी से अवकाश प्राप्त किये हुये काफी समय हो चुका है। उम्र का बोझ शरीर पर अपना स्पष्ट प्रभाव दिखला रहा है, किन्तु उनमें मानवता, गरीबों के प्रति सहानुभूति तथा साधु-सन्तों के प्रति आदर-सत्कार की भावना, अन्याय के प्रति जोश और हृदय की उज्जवलता तथा सरलता आज भी पहले जैसा ही प्रबल है। यही सद्गुण सदैव से बाबूजी की पहचान बनते चले आ रहे हैं। वृद्धावस्था में कष्टों द्वारा सताया जाना इस अन्तिम अवस्था का स्वाभाविक गुण है। ये कष्ट किसी भी प्रकार के हो सकते हैं। बाबूजी भी इस 'सच' से अछूते नहीं रह सके हैं।

गतवर्ष की शुरुआत में ही उनको अचानक हार्ट-अटैक की शिकायत हुई। स्वजनों ने तत्काल नर्सिंग होम में भर्ती करा दिया। बाबूजी की गम्भीर स्थिति का ध्यान से चैक–अप करने के बाद डाक्टर का निर्णय था कि यदि चौबीस घण्टे कुशलता पूर्वक व्यतीत हो जाते हैं तो बाबूजी की जीवनरक्षा की जा सकती है। माताजी की अवस्था को ध्यान में रखकर, उन्हें इस विषय में कोई सूचना नहीं दी गयी। परिजनों ने सामान्य बीमारी बतलाकर उन्हें ढाढ़स बँधा दिया था। उसी रात्रि की सुबह जब बाबूजी अपने प्राणों की रक्षा हेतु मृत्यु से संघर्ष कर रहे थे, ब्रह्म मुहूर्त की प्रातःकालीन शुभबेला में माताजी को स्वप्नावस्था में परम् गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का दिव्य दर्शन हुआ। गुरुदेव जी ने माताजी से कहा– "बिल्कुल चिन्ता मत करना, श्री प्रभुजी के चरणों का निरन्तर ध्यान करते रहना सब ठीक हो जायेगा"। गुरुदेव प्रदत्त इस शुभ सन्देश को पाकर माताजी, बाबूजी की बीमारी के प्रति बिल्कुल निश्चिन्त हो गयीं और रसोई में भोजन बनाने वालों को निर्देशित करने लगीं, "अरे बहादुर, आज के भोजन में तुम क्या–क्या व्यंजन बना रहे हो ? एक दाल जरूर बना लेना बाबूजी के लिए ठीक रहेगी, अस्पताल से आकर खालेंगे। चुप क्यों है ? कोई उत्तर क्यों नहीं देता ? अच्छा ! समझ गई बाबूजी के कारण कल से बहुत भागदौड़ करनी पड़ी है थकान हो गई होगी कोई बात नहीं थोड़ा विश्राम करके बना लेना"। वह बेचारा अचम्भित होकर माताजी के पास खड़ा सोच रहा था कि कुछ घण्टों के बाद शायद बाबूजी न रह पायें किन्तु गम्भीर हालातों की जानकारी न होने से ये अपने कार्यों में कितनी मग्न हैं। ज्येष्ठ पुत्र श्री सिसोदिया जी ने कई बार सोचा कि स्पष्ट बात माताजी को बता दें किन्तु हिम्मत नहीं हुई।

कुछ लोगों को, माताजी को लेने के लिए घर पर भेजा ताकि वे अन्तिम दर्शन कर सकें, किन्तु माताजी ने यह कहकर सभी को लौटा दिया कि मुझे पूरा भरोसा है गुरुदेव पर वे स्वस्थ ही होंगे, मैं क्या करूँगी वहाँ आकर ?

वास्तव में बाबूजी बिल्कुल स्वस्थ हो गये और तीसरे–चौथे दिन कुशल पूर्वक घर लौट आये। नर्सिंगहोम से डिसचार्ज होते समय डा. ने बाबूजी से कहा–"आप स्वस्थ होकर हमारे यहाँ से लौट रहे हैं। हमें बेहद खुशी है किन्तु मैं अपने अब तक के अनुभव से इतना अवश्य जान गया हूँ कि आप मेरी दवा से स्वस्थ नहीं हुये भले ही मैंने आपका इलाज किया है। किसी अलौकिक शक्ति के सहयोग से ही आप को नया जीवन मिल सका है जो हमारे सामर्थ्य की बात नहीं थी।" इस घटना के बाद बाबूजी के हृदय में श्री गुरुदेवजी के प्रति अति श्रद्धा उमड़ पड़ी। उनके मन में धारणा बनी कि श्री महाप्रभुजी के भव्य मन्दिर का निर्माण घर में करा दिया जाये। बहुत समय पहले दादा गुरुदेव श्री रामलाल जी महाराज का एक बड़े आकार का स्वरूप, बाबूजी ने तैयार करवाया था। एक बार जब गुरुदेव घर पर पधारे तो श्री प्रभुजी के उस स्वरूप के दर्शन करके बड़े प्रसन्न हुये और उसी क्षण गुरुदेव ने उन्हें आदेश किया, "लल्ला ! प्रभुजी का एक मन्दिर बनवाकर उसमें इस स्वरूप को विराजमान करना। श्री प्रभुजी उस मन्दिर में साक्षात विराजमान रहेंगे नित्य प्रति आरती पूजन करते रहना।" फिर गुरुदेव ने आगे कहा–"देखो, जिस मन्दिर में परम् कल्याण धन श्री प्रभुजी विराजमान रहते हैं उनके स्वाभाविक प्राणायाम की श्वास-प्रश्वांस से मीलों दूर का क्षेत्र पवित्र रहता है और इस प्रकार इस पवित्र क्षेत्र में रहने वाले सभी मनुष्यों तथा जीवजन्तुओं को पवित्र वातावरण सहज ही प्राप्त हो जाता है।

श्री गुरुदेव जी की इस आज्ञा की स्मृति प्रबल होने पर बाबूजी व माताजी ने मन्दिर निर्माण की योजना को शीघ्रतिशीघ्र साकार रूप देने का दृढ़ निश्चय कर लिया। इस प्रकार गुरुदेव की ही महान अनुकम्पा से जनवरी-फरवरी 1997 में श्री महाप्रभुजी के सुन्दर मन्दिर का निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ, जिसमें महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज व श्री गुरुदेव भगवान (श्री चन्द्रमोहन जी महाराज) के स्वरूपों के साथ-साथ संगमरमर की श्रीकृष्ण व श्री राधाजी तथा श्री दुर्गाजी की सुन्दर मूर्तियों की प्रतिष्ठा की गई है। मन्दिर निर्माण के 10-15 दिन बाद ही बाबूजी की पुनः अचानक तबियत खराब हो गई। बेहोश होकर कमरे के फर्श पर गिर पड़े। माताजी को लगा अब इनका बचना शायद बहुत मुश्किल है। बाबूजी को जी.जी. हास्पीटल, संजय प्लेस में भर्ती करवा दिया गया। चैक-अप होने पर ज्ञात हुआ कि दूसरी-बार हार्टअटेक हुआ है। यह घटना माताजी के सामने ही घटित हुई थी अतः उनका दिल बैठने लगा। दूसरी बार के हार्टअटैक में वो भी वृद्धावस्था में कौन बचता है भला ? सभी ने उम्मीद छोड़ दी। माताजी बहुत घबरा गईं आँखों में आँसू उमड़ कर रह गये। वे तुरन्त हाथ-मुँह धोकर मन्दिर में प्रविष्ट हुईं और श्री प्रभुजी के आगे दोनों हाथ जोड़कर निवेदन किया, आपसे

मेरी एक ही प्रार्थना है, हे दया के सागर दीनबन्धु, अपने हर संकट में हमारी करुण पुकार से पहले हमपर अपनी महान करुणा की वर्षा की है। जो होना है वह होकर रहता है इस अटल सत्य को जानने के साथ-साथ, हे सर्वशक्तिमान प्रभुजी मैं यह भी अखण्ड विश्वास के साथ जानती हूँ कि आप तो असम्भव को सम्भव बनाने वाले हैं, आप की अशरण के लिए एकमात्र शरण हैं, अतः मैं आपसे हाथ जोड़कर निवेदन करती हूँ कि यदि मैंने जीवन में कभी आपकी अवज्ञा न की तो तो प्रसन्न होकर एक और कृपा कर दें। मेरी शेष आयु को मेरे पतिदेव को सौंपदें, मैं चाहती हूँ मेरा शरीर मेरे पति के रहते पूरा हो। अवसर मिलने पर, उस रोज रात को लगभग साढे दस बजे मैं बाबूजी को देखने जी.जी. हास्पीटल पहुँचा। बाबूजी स्वस्थ लेटे थे मुझे देखकर बहुत खुश हुए उन्होंने लेटे हुए ही बडे स्नेह पूर्वक मुझे अपनी दायीं भुजा में भर लिया। कहने लगे दिन में हमारी तबियत बहुत खराब थी बडी बेचैनी हो रही थी। दिन में पूजा से उठकर तुरन्त ही हमें देखने सुशीला यहाँ आईं थीं हमारे माथे पर हाथ फेर कर बोली— "प्रभुजी सब भली करेंगे।" उनके हाथ फेरते ही कब नींद आ गई पता नहीं चला अब मैं बिल्कुल स्वस्थ महसूस कर रहा हूँ।

इस प्रकार श्री सद्गुरुदेव भगवान की महान अनुकम्पा से बाबूजी इस वृद्धावस्था में दूसरे हार्ट-अटैक के दौरान भी पूर्णरूपेण स्वस्थ रहे। किन्तु इस बार माताजी के प्रबल पुण्य भी उनके पति को जीवन रक्षा करने में सम्मिलित थे। अब तक पतिव्रता सावित्री का नाम सुना था जिसने अपने पुण्य-बल से यमराज को अपने पति सत्यवान के प्राणों को लौटाने के लिए विवश कर दिया था, अन्ततः यमराज जी को खाली हाथ लौटना पड़ा। वही चित्र, आज माताजी ने अपने पति की प्राणरक्षा कराकर, प्रस्तुत कर दिया है। चार दिन बाद बाबूजी सकुशल अपने घर पर आ गये। बाबूजी ने सवाई गाँव से गुरुभाई श्री लक्ष्मण सिंह सितारा जी के मण्डल को बुलाकर बडे धूमधाम से मन्दिर के उद्घाटन के उपलक्ष्य में श्री प्रभुजी का कीर्तन करवाया अनन्त करुणा की खान हमारे गुरुदेव की कृपाओं का विस्तार भी अनन्त ही है केवल माताजी श्रीमति सुशीलाजी के ही परिवार से ही इतना कुछ जानने लिखने और अपनाने के लिए मेला गुरुदेव जी के हर बच्चे का परिवार ऐसी ही अद्भुत कृपाओं से पवित्र हुआ है। हम सबके हैं सारा जहाँ (UNIVERSE) उनका है फर्क इतना ही है कि जिन्हें श्री प्रभुजी की चरणरज प्रसाद को ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे अन्तिम लक्ष्य कल्याण के अत्यन्त निकट हैं शेष लोगों को इस बिन्दु तक आने में बहुत समय लगेगा किन्तु यदि किसी भी प्रकार की अद्भुत शक्ति का वे अनुभव करते हैं तो यह अप्रत्यक्ष रूप से हमारे गुरुदेव ही कृपाओं का ही प्रत्यक्ष रूप से हमारे गुरुदेव की कृपाओं का प्रत्यक्ष फल है। श्री गुरुपदेवजी की दया से उनकी ही इच्छा से श्रीमती सुशीला देवी जी के परिवार में घटित होने वाली उन्हीं के अद्भुत चरित्रों को पाँच कड़ियों में आप तक पहुँचा सका हूँ। इस कार्य हेतु गुरुदेव और अधिक बल प्रदान करे यही मेरी प्रार्थना है।

(जयगुरुदेव)

खेल-खेल में बात-बात में शक्ति पात

जगमन्दर दास (सहारनपुर)

योग योगेश्वर गुरुदेव के श्री चरण कमल मुझे वर्ष १९५७.५८ में प्राप्त हुए थे। उसी समय से उनकी अनुपम योग-शक्ति के चमत्कार आज तक देखने, सुनने और स्वयं के अनुभव में आ रहे हैं। किस प्रकार शक्ति पात करके वे अन्तः चक्षु खोल परम प्रभु के दर्शन कराते और अभी तक करा रहे हैं।

जब कोई छोटा बालक उनके पास आता, उसे वे बड़े प्रेम से अपनी गोद में बैठा, कभी अपनी दाढ़ी से स्पर्श कराते और कभी-कभी अट्टे-बट्टे का खेल खेला करते। बच्चे के हाथ को पकड़कर बगल तक स्पर्श करते जाते थे। कोई है ऐसा व्यक्ति जो यह समझता कि कितनी अमूल्य निधि वे अपनी छोटी सी क्रिया द्वारा उस नन्हे से बालक को प्रदान कर रहे हैं। जैसे किसी रोगी को इंजीक्शन लगाकर उसको चिकित्सक शक्ति करता है, ठीक उसी तरह वे अपने प्यारे को शक्ति दे निहाल करते थे। मैंने बहुत दिनों तक तो विनोद मात्र ही समझा, परन्तु कुछ दिन बाद यह समझ लिया कि वे उसके उज्जवल भविष्य के लिए उसे अपनी अनुपम कृपा कर दान दे रहे हैं, जिसका परिणाम बाद में सामने आयेगा।

सहारनपुर मे निवास करते हुए मै अक्सर सभी भाई-बहिनों के पास आता-जाता रहता हूँ। एक दिन मैं भाई जी मतीलाल के यहाँ गया था। प्रभु चर्चा चलते उनके लड़के राम ने अपनी नीलकंठ जाने की इच्छा दर्शाते हुए ऋषिकेश "योग-साधन आश्रम" में रुकने की व्यवस्था के बारे में पूछा। मैंने उससे कहा "बेटा व्यवस्था सब है परन्तु तुम्हे वहाँ कोई नहीं जानता है, अतः तुम मेरा पत्र लेते जाना तो तुम्हें वहाँ ठहरने या रुकने में कोई कठिनाई नहीं आयेगी। मैंने एक सलाह दी कि तुम आश्रम जाते समय रुकना और श्री प्रभु जी के चरणों में अपनी पवित्र कामना को सफल बनाने की प्रार्थना कर आगे जाना। उसने मेरी बात को स्वीकार कर लिया। जब वह आश्रम पहुँचा तो वहाँ श्री प्रभुजी की आरती हो रही थी। उसने भी प्रसाद ग्रहण किया और अपनी यात्रा की सफलता की याचना कर भगवान नीलकंठ जी की यात्रा आरम्भ कर दी। उसने मुझे अपने मुख से सुनाया कि जब-जब वह पहाड़ की दुर्गम चढाई चढ़ता और जरा आँखें बन्द करता तो उसे श्री नीलकंठ महादेव के दर्शन होते। उसने ध्यान में अनन्त शिवलिंगों के दर्शन लाभ किए और जब तक वह अन्तिम स्थान पर नहीं पहुँचा श्री प्रभु जी उस पर अपनी कृपा करते रहे। मैंने उसे समझाया कि यही उन सर्वशक्तिमान की दयालुता है।

दूसरी बार, जब मैं उसके घर गया, तो मेरे पास आने को तैयार था। मुझे देखकर सारे घर वाले हर्षित हो उठे।

जैसे ही मैं बैठा, उसने अपनी राम कथा मुझे सुनानी इस प्रकार आरम्भ कर दी "मन्त्री जी, क्या बताऊँ, रात मुझे ऐसा स्वप्न दिखायी दिया जहाँ श्री गुरुदेव जी की पत्थर की मूर्ति स्थापित है उसी दिव्यमूर्ति के साथ एक स्त्री बात कर रही है। वह मूर्ति रूपी श्री गुरुदेव उस से खूब बात कर रहे हैं और उसकी बातों का उत्तर दे रहे हैं। सारी बातें इस समय मुझे याद नहीं। हाँ, उस मूर्ति के मुख से यह सुना कि मैं ब्रह्म हूँ फिर थोड़ी देर बाद वह स्त्री वहाँ से चली गई और मैं उनके श्री चरणों में गिर पड़ा। मैंने कहा कि मैं आपके चरणों में समर्पित हूँ। श्री गुरुमूर्ति ने कहा– तुम समर्पित नहीं हो, केवल प्रणाम कर रहे हो।" मैंने फिर कहा– "मैं आपकी शरण में हूँ" हाँ ! किन्तु समर्पित नहीं। मैंने आगे कहा– कि आप मुझे अपने पास ही रखने की कृपा करें। यह बातें चल ही रही थीं कि मेरी माँ जो भी ध्यानी है और उन्हें श्री प्रभु जी के ध्यान दर्शन होते रहते हैं। वहाँ आईं और मुझे उनके श्री चरणों की पावन गोद से वंचित कर अपने साथ ले गईं।

मुझे थोड़ा विस्मय हुआ कि यह बालक सत्संग में आता नहीं और उन दया निधि का प्यार और कृपा को पा रहा है। बातों-बातों में उसने कहा कि जब मैं छोटा था तो श्री गुरुदेव जी महाराज मेरे हाथ को पकड़कर अट्टे-बट्टे का खेल किया करते थे। और बहुत लाड़ लड़ाते थे।

मुझे तुरन्त मेरी बुद्धि ने समझाया कि यह उन परम प्रभु कि शक्तिपात का नतीजा है और वो वह बात-बात में खेल-खेल में किया करते थे।

उनकी लीला को कौन जाने वह किस प्रकार और क्यों क्या-क्या करते थे ? छुपे हुए वस्त्रों में वे साक्षात् परं ब्रह्म थे। उनके श्री चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम करता हुआ मैं अपनी बात को विश्राम देता हूँ और उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे दया के सागर हम सब पर अपने श्री चरणों का प्रेम प्रदान करने की कृपा करते रहें। ※※※

चक्षु सम्पन्न व्यक्ति देखेंगे कि भारत का ब्रह्मज्ञान समस्त पृथ्वी का धर्म बनने लगा है। प्रातःकालीन सूर्य की अरुण किरणों से पूर्व–दिशा आलोकित हो उठी है, परन्तु जब वह सूर्य मध्यान्ह–गगन में प्रकाशित होगा, उस समय उसकी दीप्ति से समग्र भू–मण्डल दीप्तिमय हो जायगा।

'सिद्धयोग' मासिक (पत्रिका) का विवरण

फार्म नं० ४

१. प्रकाशन का स्थान— श्री सिद्धगुफा, सवांई, आगरा (उ० प्र०)।

२. प्रकाशन का अवधिक्रम—मासिक

३. मुद्रक का नाम— विनय गजानन शर्मा।
राष्ट्रीयता— भारतीय।
पता— कर्मयोग प्रिण्टिंग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा-२८२००१।

४. प्रकाशक का नाम— विनय गजानन शर्मा कृते सिद्धगुफा प्रकाशन, सवांई (आगरा)।
राष्ट्रीयता— भारतीय।
पता— श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (आगरा)

५. सम्पादक का नाम— आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा।
राष्ट्रीयता— भारतीय।
पता— श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (आगरा)।

६. स्वत्वाधिकारी— ब्रह्मलीन अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज।

मैं विनय गजानन शर्मा यह घोषित करता हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

कृते सिद्धगुफा प्रकाशन
विनय गजानन शर्मा

प्रकाशकीय !

किन्हीं अपरिहार्य तकनीकी विवशता के कारण 'सिद्धयोग' का दसवाँ (जनवरी) अंक प्रकाशित नहीं हो सका। इसके कारण पाठकों को हुई असुविधा का हमें खेद है। जनवरी-फरवरी का संयुक्तांक आपकी सेवा में प्रस्तुत है। विश्वास है 'सिद्धयोग' के सुधी पाठकों का स्नेह और सहयोग हमें निरन्तर प्राप्त होता रहेगा।

—प्रकाशक

प्रेषण कार्यालय :—

सिद्धयोग

योग-सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक
श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र
सयांई (एत्मादपुर) आगरा

PRINTED MATTER

Book Post

श्री ---

अभिलाषा !

कदा वृन्दारण्ये तरणि तनया पुन्य पुलिने ।
स्मरन् श्री गोपालं निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥

अर्थात्

अहा ! कब वह समय होगा, जब मैं वृन्दावन में सूर्यतनया श्री यमुना जी के तट पर बैठकर गोपाल श्रीकृष्ण का ध्यान करते हुए अपने जीवन के लम्बे दिवसों को निमिषमात्र की तरह बिता सकूँगा । (अभिलाषाष्टक)

प्रका. एवं मुद्रक—विनय गजानन बर्वे द्वारा कमर्शियल प्रिन्टिंग प्रेस, बर्फाने वाली गली, सदर बाजार, आगरा से लिए राष्ट्रीय बुक एवं प्रिन्टिंग क्लब, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग साधना केन्द्र सयांई, आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326